वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL

मार्च-अप्रैल 2022

अंदर पढ़े :

HELP
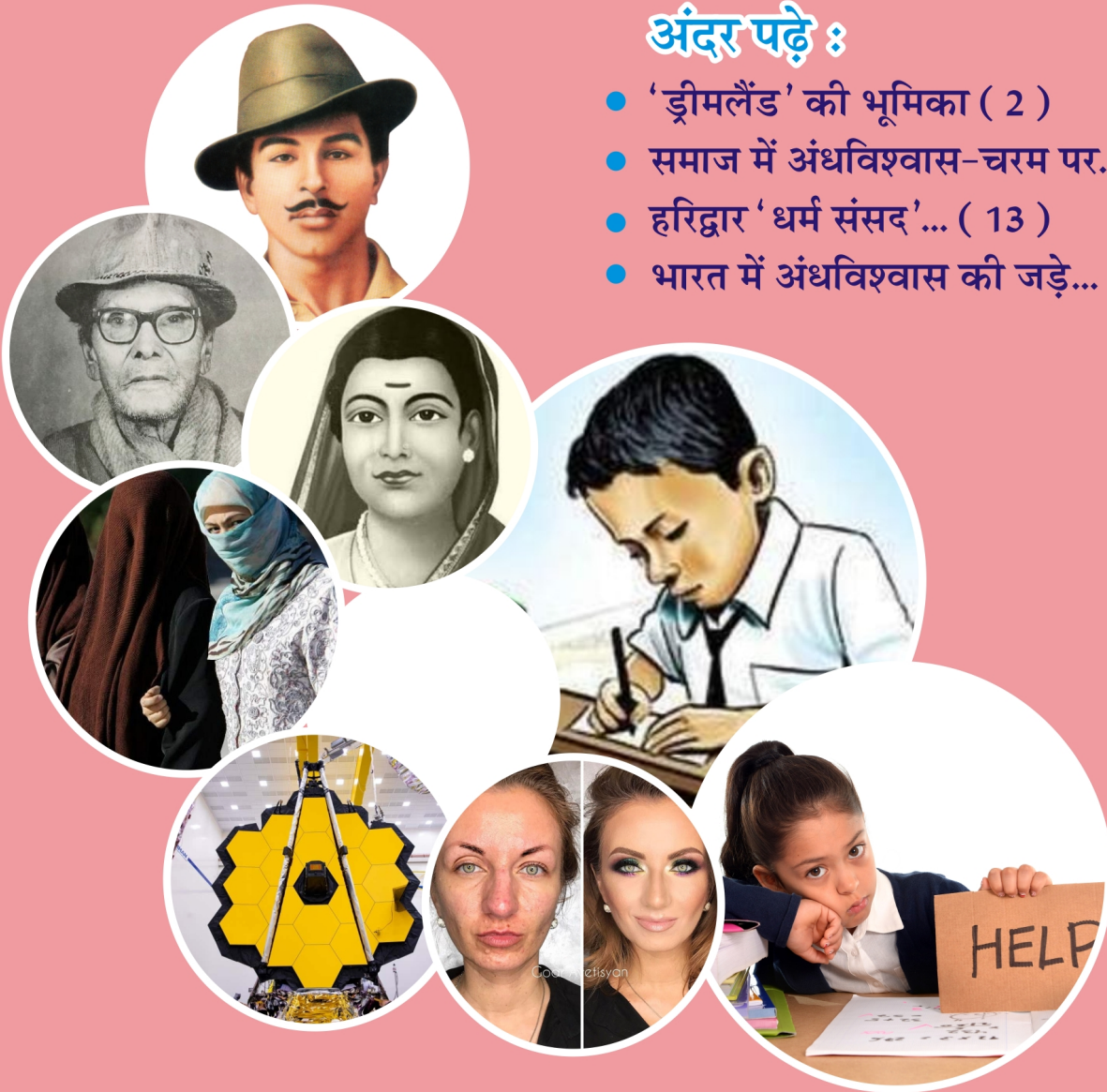
20/-

ज्यादा विश्वास करने से कोई भी चीज़ असली नहीं हो जाती। ... जेमज़ रैंडी

भावनाएं क्यों भड़कती है?

खून अपना हो या पराया हो
नस्ल ए आदम का खून है आख़िर
जंग मशरिक में हो या मगरिब में
अमन ए आलम का खून आख़िर

बम घरों पर गिरें कि सरहद पर
रूहे-तामीन जख्म खाती हैं
खेत अपने जलें या औरों के
जीस्त फाकों से तिलमिलाती है

टैंक आगे बढ़ें या पीछे हटें
कोख धरती की बांझ होती है
फतेह का जश्न हो या हार का सोग
जिंदगी मय्यतों पे रोती है

जंग तों खुद ही एक मसला है
जंग क्या मसअलों का हल देगी
खून और आग आज बरसेगी
भूख और एहतियाज कल देगी

इसलिए ए शरीफ इंसानों
जंग टलती रहे तो बेहतर है
आप और हम सभी के आंगन में
शमम्मा जलती रहे तो बेहत है।

-साहिर लुधियानवी

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि) के नाम से
खाता सं. 00440001 00282234
IFSC: PUNB0004400
में जमा करा सकते है।

जिंदगी के संघर्ष में वही जीतते हैं, जो हालात को काबू करने की काबिलियत रखते हैं।
चार्ल्स डार्विन

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028
संपादक
प्रा बलवंत सिंह
tarksheeleditor@gmail.com
94163 24802

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार गिल, कनेडा
अछर सिंह खरलवीर, कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44 748 635 1185)
मा. भजन सिंह कनेडा
बलदेव रहिपा, टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
द्विवार्षिक : 200/- रू.
विदेश : वार्षिक : 25 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

प्रा. बलवंत सिंह, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी, संपादक, मकान न. 1062, आदर्श नगर, पिपली, जिला कुरूक्षेत्र-136131 (हरियाणा) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट से मुद्रित करके तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण हेतु जारी किया।

इस अंक में

कंपोजिंग/सैटिंग : हरप्रीत रूबी

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए:

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.
wordpress.com
Tarksheel on Mobile App:
Readwhere.com

संपादकीय

लड़कियों को जबरन हिजाब पहनने से रोकना या उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर करना दोनों ही अलोकतांत्रिक, अमानवीय और नारी-विरोधी कार्य हैं। यह एक महिला की सामाजिक और यहां तक कि संवैधानिक स्वतंत्रता पर सीधा हमला है। उन्हें यूनिफॉर्म ड्रेस कोड की आड़ में किसी भी सूरत में जायज नहीं ठहराया जा सकता। कर्नाटक के एक कॉलेज में बुर्का पहनकर दाखिल हो रही युवती का सीन सभी ने देखा है। भगवा कपड़े पहने और नारेबाजी कर रही युवकों की भीड़ युवती को छेड़ रही है। लड़की अल्लाहु अकबर का नारा लगाती है और भीड़ भगवा नारे लगाती है। यह दृश्य हर समझदार व्यक्ति को अंदर तक झकझोर कर रख देता है। यह युवाओं की गलती नहीं है, राज्य सत्ता एक सुनियोजित तरीके से फासीवादी एजेंडे के तहत उनके दिमाग में जहर घोल रही है। असली दुश्मनों को छिपाने के लिए काल्पनिक दुश्मन गढ रही हैं। युवाओं को इस दिशा में ले जाया जा रहा है तांकि बेरोजगारी, गरीबी, शिक्षा की कमी आदि से पीड़ित और उज्वल भविष्य के बिना ये युवा इस व्यवस्था के परिवर्तन के रास्ते में न आएं। गोहत्या, लव जिहाद आदि से लेकर, धार्मिक संसदों द्वारा भारत को हिंदू राष्ट्र घोषित किए जाने के बाद, अब मुस्लिम महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले हिजाब के मुद्दे को उठाया गया है। कर्नाटक के बीजेपी अध्यक्ष ने हिजाब पहनने को तालिबानीकरण बताकर सांप्रदायिक आग को और भड़का दिया है. सदियों से महिलाओं पर पितृसत्तात्मक शासन के तहत उनकी स्वतंत्रता को दबाने के लिए धर्म को आधार बना कर बहुत से प्रतिबंध लगाए जाते रहे हैं। दरअसल यह मामला संघ की मुस्लिम विरोधी मानसिकता से जुड़ा है. सुप्रीम कोर्ट में जीत के बावजूद, युवा हिंदू महिलाएं केरल के सबरीमाला मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकती हैं। यद्यपि हम मंदिरों या अन्य पूजा स्थलों पर जाने की वकालत नहीं करते हैं, लेकिन हम इस घटना को एक लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के रूप में पूरी तरह से गलत मानते हैं। अब बात इस बात पर आ गई है कि मंदिर के द्वार पर महिलाओं के मासिक धर्म की जांच के लिए मशीन लगाने की योजना है. कर्नाटक के बाद मध्य प्रदेश में भी हिजाब का मुद्दा गरमा गया है. आज जरूरत इस बात की है कि लोग राज्यसत्ता के इशारे पर भगवा ब्रिगेड द्वारा प्रतिदिन उठाये जा रहे इन सांप्रदायिक मुद्दों की हकीकत जानें। एक आम आदमी की बुनियादी जरूरतें - शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएं, रोजगार आदि प्रत्येक नागरिक को समान और कुशल तरीके से प्रदान की जाने की बजाए और केवल कॉर्पोरेट्स के लाभ के लिए चिंतित राज्यसत्ता समाज को सांप्रदायिक आग में झोंकने में लगी है । आइए इन सब फासीवादी एजेंडों को समझें, शिक्षित बनें और असली हकों की प्राप्ती हेतु संघर्ष करें।

'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका

शहीद भगत सिंह

भगत सिंह ने एक पुराने क्रांतिकारी लाला रामसरन दास की एक पुस्तक 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका लिखी, जो कि उनकी कविताओं का एक संकलन था। यह लेख भगत सिंह की बौद्धिक क्षमता और जटिल राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों की उनकी समझदारी को और साथ ही उन्हें खूबसूरत ढंग से पेश करने की क्षमता को भी दर्शाता है। भगत सिंह की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता, जो इस लेख में स्पष्ट रूप से सामने आती है, वह है उन लोगों के प्रति सम्मान और तदनुभूति की भावना जो उनसे वरिष्ठ हैं और साथ ही विश्वास और धर्म के मुद्दों पर मूलभूत रूप से अलग राय रखते हैं। –**संपादक**

मेरे श्रेष्ठ मित्र लाला रामसरन दास ने मुझसे अपनी काव्यकृति 'दी ड्रीमलैण्ड' की भूमिका लिखने के लिए कहा है। मैं न तो कवि हूँ, न साहित्यकार हूँ और न पत्रकार या आलोचक ही हूँ, इसलिए उनकी इस माँग का औचित्य मैं किसी भी तरह से नहीं समझ पा रहा हूँ। लेकिन जिन परिस्थितियों में मैं हूँ उनमें लेखक से इस बारे में बहस–मुबाहसा कर पाना संभव नहीं है, इसलिए मेरे सामने मित्र की ईच्छा पूरी करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता।

चूँकि मैं कवि नहीं हूँ, इसलिए मैं उस दृष्टिकोण से इस पर बहस करने नहीं जा रहा हूँ। मैं छन्दों–तुकों के ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ और यह भी नहीं जानता कि छन्दों के मानदण्डों पर यह खरी उतरेगी या नहीं। एक साहित्यकार नहीं होने के नाते मैं राष्ट्रीय साहित्य में इसका उचित स्थान दिलाने के दृष्टिकोण से इस पर बहस करने नहीं जा रहा हूँ।

एक राजनीतिक कार्यकर्ता होने के नाते अधिक से अधिक मैं इस पर उसी दृष्टीकोण से बहस कर सकता हूँ। लेकिन यहाँ भी एक बात मेरे काम को व्यावहारिक तौर पर असम्भव, या कम से कम बहुत कठिन बना देती है। नियमानुसार भूमिका हमेशा हमेशा वह आदमी लिखता है जो कृति की विषयवस्तु के बारे में वही विचार रखता हो जो लेखक रखता है। लेकिन यहाँ मामला काफ़ी भिन्न है। मैं अपने मित्र से सभी मामलों पर एकमत नहीं हूँ। वे इस तथ्य से परिचित थे कि विभिन्न अहम बिन्दुओं पर मैं उनमें भिन्न विचार रखता हूँ। इसलिए, मैं यह जो लिख रहा हूँ वह कम से कम इस पुस्तक की भूमिका नहीं होने जा रही है, और चाहे जो हो। यह काफ़ी हद तक उसकी आलोचना हो सकती है, इसलिए इसका स्थान पुस्तक के अन्त में होगा न कि उसके आरम्भ में।

राजनीतिक क्षेत्र में 'ड्रीमलैण्ड' का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूण है। वर्तमान परिस्थिति में वह आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण रिक्तता को भरती है। वास्तव में, हमारे देश के सभी राजनीतिक आन्दोलनों में, जिन्होंने हमारे आधुनिक इतिहास में कोई न कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है, उस आदर्श की कमी पूरी रही है जिसकी प्राप्ति उसका लक्ष्य था। क्रान्तिकारी आन्दोलन इसका अपवाद नहीं है। एक ग़दर पार्टी को छोड़कर जिसने अमेरिकी प्रणाली की सरकार से प्रेरित होकर स्पष्ट शब्दों में कहा था कि वे मौजूदा सरकार की जगह गणतान्त्रिक ढंग की सरकार कायम करना चाहते हैं। मुझे अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद एक भी ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी नहीं मिली जिसके सामने यह विचार स्पष्ट हो कि वह किस लिए लड़ रही है। सभी पार्टियों में केवल ऐसे लोग थे जिनके पास केवल एक विचार था और वह यह था कि उन्हें विदेशी शासकों के विरुद्ध संघर्ष करना है यह विचार पर्याप्त रूप से सराहनीय है। लेकिन इसे एक क्रांतिकारी विचार नहीं कहा जा सकता। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि क्रांति का अर्थ मात्र उथल–पुथल या रक्तरंजित संघर्ष नहींहोता। क्रांति में, मौजूदा हालात (यानी सत्ता) को पूरी तरह से ध्वस्त करने के बाद, एक नये और बेहतर रूप से अन्तर्निहित रहता है।

राजनीतिक क्षेत्र में, उदारवादी लोग मौजूदा सरकार में ही कुछ सुधार चाहते थे, जबकि उग्रवादी इससे कुछ अधिक चाहते हैं और उस उद्देश्य के लिए उग्रवादी साधन अपनाने के लिए तैयार थे। क्रांतिकारी लोग हमेशा अतिवादी साधनों को अपनाने के पक्षधर रहे हैं और उनका एक ही उद्देश्य रहा है – विदेशी प्रभुत्व को उखाड़ फेंकना। बेसक इनमें कुछ ऐसे लोग भी रहेहैं जो इन साधनों से कुछ सुधार प्राप्त करने के पक्षधर थे। इन सभी आन्दोलनों को सही मायने में क्रांतिकारी आन्दोलन की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

लेकिन, लाला रामसरन दास पहले क्रांतिकारी हैं जिन्हें 1908 में एक बंगाली फ़रार (क्रान्तिकारी) ने पंजाब में औपचारिक रूप से क्रांतिकारी प्राटी में शामिल किया था। तब से वे लगातार क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़ रहे और अन्ततोगत्वा ग़दर पार्टी में शामिल हो गये, लेकिन उन्होंने अपने उन विचारों का परित्याग नहीं किया जो आन्दोलनों के आदर्शों के बारे में पुराने क्रान्तिकारियों के थे। पुस्तक के आकर्षण और मूल्य को बढ़ाने वाला यह दूसरा दिलचस्प तथ्य है। लाला रामसरन दास को 1915 में मौत की सज़ा मिली थी और बाद में उसे आजीवन कारावास में बदल दिया गया था। आज खुद फाँसी की कालकोठरी में बैठकर मैं पाठकों को साधिकार बता सकता हूँ कि आजीवन कारावास मौत की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर है। लाला रामसरन दास को पूरे चौदह वर्ष जेल की सज़ा भुगतनी पड़ी। यह कविता उन्होनें दक्षिण की किसी जेल में लिखी थी। लेखक की उस समय की मन:स्थिति और मानसिक संघर्ष का कविता पर स्पष्ट प्रभाव है। जो इसे और अधिक सुन्दर और दिलचस्प बना देता है। उसने जिस समय इसे लिखने का निश्यय किया उस समय वह किन्हीं नैराष्यपूर्ण मनोभावों के विरुद्ध कठिन संघर्ष कर रहा था। उन दिनों में, जब बहुत से साथी आश्वासन ('अण्डटेकिंग') देकर छूट चुके थे और सबके सामने उसके (लेखक के) सामने भी बड़े-बड़े प्रलोभन थे, और जब पत्नी और बच्चों की मधुर दुखदायी यादें अपनी मुक्ति की आकांक्षा को और अधिक मजबूत कर रही थीं, ऐसी स्थिति में लेखक को इन चीज़ों के पस्तहिम्मती करने वाले प्रभाव के विरुद्ध कठिन संघर्ष करना पड़ा था और उसने अपना ध्यान इस रचना-कार्य की ओर मोड़ दिया था। इसलिए, प्रारम्भिक पदों में हमें इस तरह का आकस्मिक भावोद्वेग मिलता है –

''पत्नी, बच्चे और मित्र
जो मुझे घेरे रहते थे
वे चारों और घूमते
ज़हरीले साँपों के समान थे।''

("Wife, children, friends, that me surround
Were poisonous snakes all around")

वह (कवि) शुरू में दर्शन की चर्चा करता है। यह दर्शन बंगाल और पंजाब के सभी क्रान्तिकारी आन्दोलनों की रीढ़ है। इस बिन्दु पर मैं लेखक से बहुत व्यापक मतभेद रखता हूँ। उसकी ब्रह्माण्ड की व्याख्या हेतुवादी और आधिभौतिक है, जबकि मैं एक भौतिकवादी हूँ और इस परिघटना (फेनॉमेना) के साथ मेरी व्याख्या कारणसम्बद्ध होगी। फिर भी किसी भी तरह से यह रचना देश-काल की दृष्टि से अनुपयुक्त नहीं है। जो सामान्य विचार हमारे देश में मौजूद हैं वे लेखक द्वारा अभिव्यक्त विचारों के अनुरूप अधिक हैं। अपनी नैराश्यपूर्ण मनोदशा से संघर्ष के लिए उसने प्रार्थना का रास्ता अख़्तियार किया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि पुस्तक का प्रारम्भ पूरी तरह ईश्वर, उसकी महिमा के वर्णन और उसकी परिभाषा को समर्पित है। ईश्वर में विश्वास रहस्यवाद का परिणाम है जो निराशा का स्वाभाविक प्रतिफलन है। यह विश्व एक 'माया', एक स्वप्न या कल्पना है – यह स्पष्टत: रहस्यवाद है जिसे शंकराचार्य तथा दूसरे अन्य प्राचीन काल के हिन्दू सन्तों ने जन्म दिया और विकसित किया। लेकिन भौतिकवादी दर्शन में इस चिन्तन-पद्धति के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका सौन्दर्य और आकर्षण है। उसके विचार उत्साहप्रद हैं, उदाहरण के लिए-

''नींव के पत्थर बनो, अनजाने-अज्ञात,
और अपनी सीने पर बरदाशत करो खुशी-खुशी
विशाल भारी-भरकम निर्माण का बोझ,
पा लो आश्रय कष्ट सहन में,
मत करो ईर्ष्या शीर्ष पर जड़े पत्थर से
जिस पर उड़ेली जाती है सारी लौकिक प्रशंसा,''

आदि आदि।

("Be a foundation stone obscure,
And on thy breast cheerfully bear
The Architecture vast and huge,
In suffering find true refuge.
Envy not the plastered top-stone,
On which all worldly praise is thrown",
etc. etc.)

अपने निजी अनुभव के आधार पर मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ कि गुप्त कार्यों के दौरान, जब मनुष्य 'बिना किसी आशा और भय के', लगातार अपरिचित, असम्मानित, अप्रशंसित व्यक्ति की मौत मरने के लिए तैयार रहते हुए' लगातार एक जोखिम भरी जिन्दगी बिताता है, तो वह व्यक्तिगत प्रलोभनों और इच्छाओं से सिर्फ इस तरह के रहस्यवाद के सहारे ही लड़ सकता है और ऐसा रहस्यवाद किसी भी तरह से पस्तहिम्मती पैदा करने वाला नहीं होता। असली चीज़

जिसका उन्होंने वर्णन किया है वह एक क्रान्तिकारी की मानसिकता है। लाला रामसरन दास जिस क्रान्तिकारी पार्टी के सदस्य थे, उसे कई हिंसात्मक कार्यों के लिए ज़िम्मेदार ठरहाया गया था। लेकिन इससे किसी भी तरह यह साबित नहीं होता कि क्रान्तिकारी ध्वंस में सुख अनुभव करने वाले खून के प्यासे राक्षस होते हैं। पढ़िये –

''अगर जरूरत हो, तो उग्र बनो ऊपरी मौत पर
लेकिन हमेशा नरम रहो अपने दिल में
अगर जरूरत हो, तो फुँफकारो पर डसो मत
दिल में प्यार को जिन्दा रखो और लड़ते रहो ऊपरी तौर पर''।

("If need be, outwardly be wild,
But in thy heart be always mild
Hiss if need be, but do not bite
Love in thy heart and outside fight".)

निर्माण के लिए ध्वंस ज़रूरी ही नहीं, अनिवार्य है। क्रांतिकारियों को इसे अपने कार्यक्रम के एक आवश्यक अंग के रूप में अपनाना पड़ता है, और ऊपर की पंक्तियों में हिंसा और अहिंसा के दर्शन को खूबसूरत ढंग से बयान किया गया है। लेनिन ने एक बार गोर्की से कहा कि उन्हें ऐसा संगीत सुनने को नहीं मिला जो सभी नाड़ियों-शिरायों को झकझोर दे और जिसे सुनकर कलाकार का सिर थपथपाने की इच्छा पैदा हो जाये। ''लेकिन,'' उन्होंने आगे कहा था, ''यह समय सिर थपथपाने का नहीं है। इस समय हाथों को खोपड़ियाँ तोड़नी हैं, हालांकि हमारा चरम उद्देश्य हर प्रकार की हिंसा को समाप्त करना है।''[०] एक भयानक आवश्यकता के रूप में हिंसात्मक साधनों का उपयोग करते हुए क्रान्तिकारी भी ठीक ऐसा ही सोचते हैं।

इसके बाद लेखक परस्पर-विरोधी धर्मों की समस्या पर विचार करता है। वह सभी धर्मों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा करता है जैसाकि प्राय: सभी राष्ट्रवादी किया करते हैं। इस सवाल को हल करने का यह तरीका लम्बा और गोलमोल है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं इस मसले को कार्ल मार्क्स के एक वाक्य द्वारा खारिज कर दूँगा कि ''धर्म जनता के लिए अफ़ीम है।''

अन्त में उनकी कविता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा आता है। जहाँ उसने उस भावी समाज के बारे में लिखा है जिसकी रचना करने के लिए हम सभी लालायित हैं। लेकिन मैं शुरू में ही एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। 'ड्रीमलैण्ड' दरअसल एक यूटोपिया है। लेखक ने स्वयं इस बात को स्पष्ट रूप से शीर्षक में ही स्वीकार किया है। वह इस विषय पर कोई वैज्ञानिक शोध-प्रबन्ध लिखने का दावा नहीं करता। लेकिन निस्सन्देह, यूटोपिया की सामाजिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सेण्ट साइमन, फूरिये, रॉबर्ट ओवेन और उनके सिद्धान्तों के अभाव में वैज्ञानिक मार्क्सवादी समाजवाद भी नहीं होता। लाला रामसरन दास की 'यूटोपिया' का भी उसी तरह महत्व है। जब हमारा कार्यकर्ता अपने आन्दोलन के दर्शन को व्यवस्थित रूप देने और एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने का महत्व समझेगा, उस समय यह पुस्तक उसके लिए बहुत ही उपयोगी साबित होगी।

इस बात की ओर मेरा ध्यान गया है कि लेखक की अभिव्यक्ति की शैली अपरिष्कृत है। अपनी 'यूटोपिया' का वर्णन करते हुए लेखक वर्तमान समाज के विचारों से अछूता नहीं रह पाया है।

ज़रूरतमंदों को दान देना

भविष्य के समाज में यानी कम्युनिस्ट समाज में जिसे हम बनाना चाहते हैं हम धर्मार्थ संस्थाएँ स्थापित करने नहीं जा रहे हैं, बल्कि उस समाज में न ज़रूरतमंद होंगे न ग़रीब। न दान देने वाले। इस असंगति के बावजूद, इस प्रश्न को बड़े खूबसूरत ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

लेखक ने समाज की जिस सामान्य रूपरेखा की चर्चा की है वह काफ़ी हद तक वैज्ञानिक समाजवाद जैसी ही है। लेकिन कुछ ऐसी भी चीज़े पुस्तक में है जिनका विरोध या खण्डन करने, या और सटीक ढंग से कहें, तो जिनमें सुधार करने की ज़रूरत है। उदाहरण के तौर पर 427वें पद के नीचे के एक फुटनोट में वे लिखते हैं कि सरकारी कर्मचारियों को अपनी रोजी कमाने के लिए प्रतिदिन चार घण्टे खेतों या कारखानों में काम करना होगा। लेकिन यह फिर एक काल्पनिक और अव्यावहारिक बात है। सम्भवत: आज की व्यवस्था में राजकर्मचारी जो अनावश्यक रूप से ऊंचा वेतन पाते हैं, यह बात उसी की प्रतिक्रिया की उपज है। वास्तव में बोल्शेविकों को भी यह मानना पड़ा था कि मानसिक श्रम भी उतना ही उत्पादक श्रम है जितना शारीरिक श्रम। और भविष्य के समाज में जब विभिन्न तत्वों के सम्बन्धों को समायोजन समानता के आधार पर होगा तो उत्पादक और वितरक दोनों को समान महत्व का दर्जा प्राप्त होगा। आप एक नाविक से यह उम्मीद

नहीं कर सकते कि वह चौबीस घंटे में एक बार जहाज़ चलाना रोक कर उतर जाये और रोजी कमाने के लिए चार घंटे काम करने चला जाये, या एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला या अपना प्रयोग (काम) छोड़कर अपना कम का कोटा पूरा करने खेत में चला जाये। दोनों ही अत्यन्त उत्पादक श्रम कर रहेहैं। समाजवादी समाज में एकमात्र इस अन्तर की आशा की जानी चाहिए कि मानसिक श्रम करने वाला शारीरिक श्रम करने वाले से श्रेष्ठ नहीं माना जायेगा।

नि:शुल्क शिक्षा के बारे में लाला रामसरन दास के विचार वाकई ध्यान देने योग्य हैं। रूस में समाजवादी सरकार ने बहुत कुछ उसी तरह के कदम उठाये हैं।

अपराध के बारे में उन्होंने जो चर्चा की है, वह सचमुच सर्वाधिक विकसित चिन्तनधारा है। अपराध सर्वाधिक गम्भीर सामाजिक समस्या है जिसे हल करने में बहुत सर्तकर्ता की ज़रूरत है। लेखक ने अपनी ज़िंदगी का बड़ा हिस्सा जेल में बिताया है। उनके पास कुछ व्यावहारिक अनुभव हैं। एक स्थान पर उन्होंने 'हल्की मशक्कत, दरमियानी, मशक्कत, सख्त मश्क्कत' जैसे ठेठ जेल की शब्दावली का इस्तेमाल किया है। सभी दूसरे समाजवादियों की तरह वे सुझाव देते हैं कि दण्ड का आधार प्रतिशोध के वजाय सुधार का सिद्धान्त होना चाहिए। न्याय व्यवस्था का निर्देशक सिद्धान्त दण्ड देना न होकर सुधारना होना चाहिये और जेलों का रूप वास्तविक नर्क की बजाय सुधारालयों का होना चाहिए। इस सम्बन्ध में पाठकों को रूसी जेल-व्यवस्था का अध्ययन करना चाहिए।

सेना की चर्चा करते समय उन्होंने युद्ध की भी चर्चा की है। मेरे विचार से उस समय विश्वकोशों में एक संस्था के रूप में युद्ध की चर्चा बहुत थोड़े पन्नों में रहेगी और युद्ध सामग्रियाँ संग्रहालयों की गैलरियों की शोभा बढ़ायेंगी, क्योंकि उस समाज में परस्पर शत्रुतापूर्ण हित नहीं साधे जायेंगे जो युद्ध को जन्म देते हैं।

ज्यादा से ज्यादा हम यह कह सकते हैं कि एक संस्था के रूप में युद्ध का अस्तित्व संक्रमण काल तक रहेगा। वर्तमान रूस के उदाहरण से इस बात को अच्छी तरह समझा जा सकता है। वहाँ पर इस समय सर्वहारा का अधिनायकत्व कायम है। वे समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं। तब तक के लिए पूँजीवादी समाज से अपनी रक्षा के लिए उन्हें एक सेना रखनी पड़ी है। पर उनके युद्ध-उद्देश्य भिन्न होंगे। हमारे स्वप्नलोक की जमात को साम्राज्यवादी योजनाएँ युद्ध के लिए प्रेरित नहीं करेंगी। युद्ध की ट्राफियों का आस्तित्व शेष नहीं रह जायेगा। क्रांतिकारी सेनाएँ दूसरे देशों में वहाँ की जनता पर शासन करने के लिए या उन्हें लूटने के लिए नहीं बल्कि वहाँ के परजीवी शासकों को सिंहासनों से नीचे गिराने के लिए, वहाँ की जनता का खून चूसने वाले शोषण को बन्द करने के लिए और मेहनतकश जनता को मुक्त कराने के लिए जायेंगी। लेकिन हमारे जवानों को युद्ध के लिए उकसाने वाले पुराने राष्ट्रीय या जातीय विद्वेष का अस्तित्व नहीं रह जायेगा।

मुक्त चिन्तन करने वाले सभी लोगों के लिए, विश्व संघ की स्थापना सर्वाधिक लोकप्रिय और फ़ौरी उद्देश्य है। लेखक ने इस विषय पर अच्छी चर्चा की है और तथा कथित 'लीग ऑफ़ नेशंस' की सुन्दरता आलोचना की है।

571 (572) वें पद के नीचे के एक फुटनोट में लेखक ने साधन के प्रश्न की संक्षिप्त चर्चा की है। वह कहता है, ''ऐसा राज्य शारीरिक हिंसात्मक क्रान्तियों द्वारा स्थापित नहीं हो सकता। यह समाज पर बाहर से थोपा नहीं जा सकता। यह अन्दर से विकसित होगा...इसकी प्राप्ति धीरे-धीरे क्रमविकास की प्रक्रिया द्वारा और जनता को ऊपर चर्चित लाइन पर प्रशिक्षित करके होगी'', आदि। यह वक्तव्य अपने आप में असंगत नहीं है। यह सर्वथा सही है, लेकिन पूरी तरह व्याख्या न की जाने के कारण यह ग़लतफ़हमी या भ्रम पैदा कर सकता है। क्या इसका यह मतलब है कि लाला रामसरन दास को बल-प्रयोग के रास्ते की निरर्थकता का आभास हो गया है? क्या वे अहिंसा के पुरातनपन्थी समर्थक हो गये हैं? नहीं, इसका यह मतलब नहीं हैं।

आइये, इस बात की व्याख्या करें कि ऊपर उद्धत बयान का क्या मतलब है? किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा क्रान्तिकारी इस बात को ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं कि समाजवादी समाज की स्थापना हिंसात्मक साधनों से नहीं हो सकती है बल्कि उसे अन्दर से प्रस्फुटित और विकसित होना चाहिए। लेखक इसके लिए एकमात्र अस्त्र के रूप में शिक्षा को अपनाने का सुझाव देता है। लेकिन हर आदमी इस बात को आसानी से समझ सकता है कि यहाँ कि वर्तमान सरकार और दरअसल सभी पूँजीवादी सरकारें न केवल ऐसे प्रयासों की सहायता नहीं करेंगी बल्कि इसके विपरीत निर्दयतापूर्वक इसका दमन करेंगी। तब उसके 'क्रमिक विकास' से क्या उपलब्धि होगी? हम क्रान्तिकारी लोग सत्ता पर अधिकार करने और एक

शेष पृष्ठ 9 पर

तुम्हारे धर्म की क्षय

राहुल सांकृत्यायन

वैसे तों धर्मों में आपस में मतभेद है। एक पूरब मुँह करके पूजा करने का विधान करता है, तो दूसरा पश्चिम की ओर। एक जानवर का गला रेतने के लिए कहता है, तो दूसरा एक हाथ से गर्दन साफ करने को। एक कुर्ते का गला दाहिनी तरफ रखता है, तो दूसरा बाईं तरफ। एक जूठ-मीठ का कोई विचार नहीं रखता, तो दूसरे के यहाँ जाति के भीतर भी बहुत-से चूल्हें हैं। एक खुदा के सिवा दूसरे का नाम भी दुनिया में रहने देना नहीं चाहता, तो दूसरे के देवताओं की संख्या का पता नहीं। एक गाय की रक्षा के लिए जान देने को कहता है, तो दूसरा उसकी कुर्बानी को बड़ा समझता है।

इसी तरह दुनिया के सभी मजहबों में भारी मतभेद है। यह मतभेद सिर्फ विचारों तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि पिछले दो हजार वर्षों का इतिहास बतला रहा है कि इन मतभेदों के कारण मजहबों ने एक-दूसरे के ऊपर जुल्म के कितने पहाड़ ढाये। यूनान और रोम के अमर कलाकारों की कृतियों का आज अभाव क्यों दीखता है? इसलिए कि वहाँ एक मजहब आया जो ऐसी मूर्तियों के अस्तित्व को अपने लिए खतरे की चीज समझता था। ईरान की जातीय कला, साहित्य और संस्कृति को नामशेष-सा क्यों हो जाना पड़ा? – क्योंकि, इसे एक ऐसे मजहब से पाला पड़ा तो इंसानियत का नाम भी धरती से मिटा देने पर तुला हुआ था। मेक्सिकों और पेरू, तुर्किस्तान और अफगानिस्तान, मिस्र और जावा-जहां भी देखिये, मजहबों ने अपने को कला, साहित्य, संस्कृति का दुश्मन खुदा और भगवान के नाम पर, अपनी-अपनी किताबों और पाखण्डों के नाम पर मनुष्य के खून को उन्होंने पानी से भी सस्ता कर दिखलाया। यदि पुराने यूनानी धर्म के नाम पर निरपराध ईसाई बच्चे बूढ़ों, स्त्री-पुरुषों को शेरों से फड़वाना, तलवार के घाट उतारना बड़े पुण्य का काम समझते थे, तो पीछे अधिकार हाथ आने पर ईसाई भी क्या उनसे पीछे रहे? ईसामसीह के नाम पर उन्हें खुलकर तलवार का इस्तेमाल किया। जर्मनी में इंसानियत के भीतर लोगों को लाने के लिए कत्ले-आम सा मचा दिया गया। पुराने जर्मन ओक वृक्ष की पूजा करते थे। कही ऐसा न हो कि ये, ओक उन्हें फिर पथभ्रष्ट कर दें, इसके लिए बस्तियों के आसपास एक भी ओक को रहने न दिया गया। पोप और पेत्रियार्क, इंजील और ईसा के नाम पर प्रतिभाशाली व्यक्तियों के विचार-स्वातंत्र्य को आग और लोहे के जरिये से दबाते रहे। जरा से विचार-भेद के लिए कितनों को चर्खी से दबाया गया-कितनों को जीते जी आग में जलाया गया। हिन्दुस्तान की भूमि ऐसी धार्मिक मतान्धता का कम शिकार नहींहै। इस्लाम के आने से पहले भी क्या मजहब ने बोलने और सुनने वालों के मुँह और कानों में पिघले राँगे और लाख को नहीं भरा? शंकराचार्य ऐसे आदमी - जो कि सारी शक्ति लगा गला फाड़-फाड़ कर यही चिल्ला रहे थे कि सभी ब्रह्म हैं, ब्रह्म से भिन्न सभी चीजें झूठी हैं तथा रामानुज और दूसरों के भी दर्शन जबानी जमा-खर्च से आगे नहीं बढ़े, बल्कि सारी शक्ति लगाकर शूद्रों और दलितों को नीचे दबा रखने में उन्होंने कोई कोर-कसर उठा नहीं रक्खी और इस्लाम के आने के बाद तो हिन्दू-धर्म और इस्लाम के खूँरेज झगड़े आज तक चल रहे हैं। उन्होंने तो हमारे देश को अब तक बदतर बना रखा है। कहने के लिए इस्लाम शक्ति और विश्व-बन्धुत्व का धर्म कहलाता है, हिन्दू धर्म ब्रह्मज्ञान और सहिष्णुता का धर्म बतलाया जाता है, किन्तु क्या इन दोनों धर्मों ने अपने इस दावे को कार्यरूप में परिणत करके दिखलाया? हिन्दू-मुसलमानों पर दोष लगाते हैं कि ये बेगुनाहों का खून करते हैं, हमारे मन्दिरों और पवित्र तीर्थों को भ्रष्ट करते हैं, हमारी स्त्रियों को भगा ले जाते हैं। लेकिन झगड़े में क्या हिन्दू बेगुनाहों का खून करने से बाज आते हैं। चाहे आप कानपुर के हिन्दु-मुस्लिम झगड़े को ले लीजिए या बनारस के, इलाहाबाद के या आगरे के, सब जगह देखेंगे कि हिन्दुओं और मुसलमानों के छुरे और लाठी के शिकार हुए हैं - निरपराध, अजनबी स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे। गाँव या दूसरे मुहल्ले का कोई अभागा आदमी अनजाने उस रास्ते आ गुजरा और कोई पीछे से छुरा भोंक कर चम्पत हो गया। सभी धर्म दया का दावा करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के इस धार्मिक झगड़ों को देखिए, तो आपको मालूम होगा कि यहाँ मनुष्यता पनाह माँग रही है। निहत्थे बूढ़े और बूढ़ियाँ ही नहीं, छोटे-छोटे बच्चे तक मार डाले जाते हैं।

अपने धर्म के दुश्मनों को जलती आग में फेंकने की बात अब भी देखी जाती है।

एक देश और एक खून मनुष्य को भाई-भाई बनाते हैं। खून का नाता तोड़ना अस्वाभाविक है, लेकिन हम हिन्दुस्तान में क्या देखते हैं? हिन्दुओं की सभी जातियों में, चाहे आरम्भ में कुछ भी क्यों न हो अब तो एक ही खून दौड़ रहा है, क्या शक्ल देखकर किसी के बारे मे आप बतला सकते हैं कि यह ब्राह्मण है और यह शूद्र। पास-पास में रहने वाले स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्ध, जाति की ओर से हजार रुकावट होने पर भी हम आए दिन देखते हैं। कितने ही धनी खानदानों, राजवंशों के बारे में तो लोग साफ कहते हैं कि दास का लड़का राजा और दासी का लड़का राजपुत्र। इतना होने पर भी हिन्दू-धर्म लोगों को हजारों जातियों में बाँटे हुए हैं। कितने ही हिन्दू, हिन्दू के नाम पर जातीय एकता स्थापित करना चाहते हैं। किन्तु, वह हिन्दू जातीयता है कहाँ? हिन्दू जाति तो एक काल्पनिक शब्द हैं। वस्तुतः वहाँ है ब्राह्मण-ब्राह्मण भी नहीं शाकद्वीपी, सनाढ्य जुझौतिया-राजपूत, खत्री, भूमिहार, कायस्थ, आदि-आदि। एक राजपूत का खाना-पीना, ब्याह-श्राद्ध अपनी जाति तक सीमित रहता है। उसकी सामाजिक दुनिया अपनी जाति तक सीमित है। इसलिए जब एक राजपूत बड़े पद पर पहुँचता है, तो नौकरी दिलाने, सिफारिश करने या दूसरे तौर से सबसे पहले अपनी जाति के आदमी को फायदा पहुँचाना चाहता है। यह स्वाभाविक है। जबकि चौबीसों घण्टे मरने-जीने सब में साथ सम्बन्ध रखने वाले अपने बिरादरी के लोग हैं, तो किसी की दृष्टि दूर तक कैसे जायेगी?

कहने के लिए तो हिन्दुओं पर ताना कसते हुए इस्लाम कहता है कि हमने जात-पाँत के बन्धनों को तोड़ दिया। इस्लाम में आते ही सब भाई-भाई हो जाते हैं। लेकिन क्या यह बात सच है? यदि ऐसा होता तो आज मोमिन (जुलाहा), अप्सार (धुनिया), राइन (कुँजड़ा) आदि का सवाल न उठता। अर्जल और अशरम का शब्द किसी के मुँह पर न आता। सैयद-शेख, मलिक-पठान, उसी तरह का ख्याल अपने से छोटी जातियों से रखते हैं, जैसा कि हिन्दुओं के बड़ी जात वाले। खाने के बारे में छूतछात कम है और वह तो अब हिन्दुओं में भी कम होता जा रहा है। लेकिन सवाल तो है - सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र में इस्लाम की बड़ी जातों ने छोटी जातों को क्या आगे बढ़ना का कभी मौका दिया? धार्मिक नेता हों, तो बड़ी-बड़ी जातों से शाही दरबार और सरकारी नौकरियाँ सभी जगह बड़ी जातों के लिए सुरक्षित रहीं। जमींदार, ताल्लुकेदार, नवाब सभी बड़ी जातों के हैं। हिन्दुस्तानियों में से चार-पाँच करोड़ आदमियों ने हिन्दुओं के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अत्याचारों से त्राण पाने के लिए इस्लाम की शरण ली। लेकिन, इस्लाम की बड़ी जातों ने क्या उन्हें वहाँ पनपने दिया। सात सौ बरस बाद भी आज गाँव का मोमिन जमींदारों और बड़ी जातों के जुल्म का वैसा ही शिकार है, जैसा कि उसका पड़ोसी कानू-कुर्मी। हिन्दुओं से झगड़ कर अंग्रेजों की खुशामद करके कौन्सिलों की सीटों, सरकारी नौकरियों में अपने लिए संख्या सुरक्षित करायी जाती है। लेकिन जब उस संख्या को अपने भीतर वितरण करने का अवसर आता है, तब उनमें से प्रायः सभीको बड़ी जाति वाले सैयद और शेख अपने हाथ में ले लेते हैं। साठ-साठ, सत्तर-सत्तर फीसदी संख्या रखने वाले मोमिन और अन्सार मुँह ताकते रह जाते हैं। बहाना किया जाता है कि उनमें उतनी शिक्षा नहीं। लेकिन सात सौ और हजार बरस बाद भी यदि वे शिक्षा में इतने पिछड़े हुए हैं, तो इसका दोष किसके ऊपर? उन्हें कब शिक्षित होने का अवसर दिया गया? जब पढ़ाने का अवसर आया, छात्रवृत्ति देने का मौका आया, तब तो ध्यान अपने भाई-बन्धुओं की तरफ चला गया। मोमिन और अन्सार, बाबर्ची और चपरासी, खिदमतगार हुक्काबरदार के लिए बने हैं। उनमें से कोई यदि शिक्षित हो भी जाता है, तो उसकी सिफारिश के लिए अपनी जाति में तो वैसा प्रभावशाली व्यक्ति है नहीं, और वाले अपने भाई-बन्धु को छोड़कर उन पर तरजीह क्यों देने लगे? नौकरियों और पदों के लिए इतनी दौड़धूप, इतनी जद्दोजहद सिर्फ खिदमते-कौम और देश सेवा के लिए नहीं है, यह है रुपयों के लिए, इज्जत और आराम की जिन्दगी बसर करने के लिए।

हिन्दू और मुसलमान फरक-फरक धर्म रखने के लिए कारण क्या उनकी अलग जाति हो सकती है? जिनकी नसों में उन्हीं पूर्वजों का खून बह रहा है जो इसी देश में पैदा हुए और पले, फिर दाढ़ी और चुटिया, पूरब और पश्चिम की नमाज क्या उन्हें अलग कौम साबित कर सकती है? क्या खून पानी से गाढ़ा नहीं होता? फिर हिन्दू और मुसलमान के फरक से बनी इस अलग-अलग जातियों को हिन्दुसतान से बाहर कौन स्वीकार करता है? जापान में जाइये या जर्मनी, ईरान जाइये या तुर्की सभी जगह हमें हिन्दी और 'इण्डियन' कहकर पुकारा जाता है। जो धर्म भाई को बेगाना बनाता है, ऐसे धर्म

को धिक्कार! जो मजहब अपने नाम पर भाई का खून करने के लिए प्रेरित करता है, उस मजहब पर लानत! जब आदमी चुटिया काट दाढ़ी बढ़ाने भर से मुस्लमान और दाढ़ी मुंडा चुटिया रखने मात्र से हिन्दू मालूम होने लगता है, तो इसका मतलब साफ है कि यह भेद सिर्फ बाहरी और बनावटी है। एक चीनी चाहे बौद्ध हो या मुसलमान, ईसाई हो या कनफूसी, लेकिन उसकी जाति चीनी रहती है, एक जापानी चाहे बौद्ध हो या शिन्तो-धर्मी, लेकिन उसकी जाति जापानी रहती है, एक ईरानी चाहे वह मुसलमान हो या जरतुस्त, किन्तु वह अपने लिए ईरानी छोड़ दूसरा नाम स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। तो हम-हिन्दियों के मजहब को टुकड़े-टुकड़े में बाँटने को क्यों तैयार हैं इस नाजायज हरकतों को हम क्यों बर्दाश्त करें?

धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है, और, इसलिए अब मजहबों के मेल मिलाप की भी बातें कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? ''मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना''- इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मजहब बैर नहीं सिखलाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हजार बरस से आज तक हमारा मुल्क पामाल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिये, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मजहब वालों को दूसरे मजहब वालों के खून का प्यासा कौन बना रहा है? कौन गाय खाने वालों से गोबर खाने वालों को लड़ा रहा है। असल बात यह है -''मजहब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना।'' हिन्दुस्तानियों की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर। कौए को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसका, मौत को छोड़कर इलाज नहीं।

एक तरफ तो वे मजहब एक-दूसरे के इतने जबर्दस्त खून के प्यासे हैं। उनमें से हर एक एक-दूसरे के खिलाफ शिक्षा देता है। कपड़े-लत्ते, खाने-पीने, बोली-बानी, रीति-रिवाज में हर एक-दूसरे से उल्टा रास्ता लेता है। लेकिन, जहाँ गरीबों को चूसने और धनियों की स्वार्थ-रक्षा का प्रश्न आ जाता है, तो दोनों बोलते हैं। गदहा-गाँव के महाराज बेवकूफ बख्श सिंह सात पुश्त से पहले दर्जे के बेवकूफ चले आते हैं। आज उनके पास पचास लाख सालाना आमदनी की जमींदारी है। जिसको प्राप्त करने में न उन्होंने एक धेला अकल खर्च की और न अपनी बुद्धि के बल पर उसे छै दिन चला ही सकते हैं। न वे अपनी मेहनत से धरती से एक छटाँक चावल पैदा कर सकते हैं। न एक कंकड़ी गुड़। महराज बेवकूफ बख्श सिंह को यदि चावल, गेहूँ, घी, लकड़ी के ढेर के साथ एक जंगल में अकेले छोड़ दिया जाये, तो भी उनमें न इतनी बुद्धि है और न उन्हें काम का ढंग मालूम है कि अपना पेट भी पाल सकें, सात दिन में बिल्ला-बिल्ला कर जरूर वे वहीं मर जायेंगे। लेकिन आज गदहा-गाँव के महाराज दस हजार रुपया महीना तो मोटर के तेल में फूँक डालते हैं। बीस-बीस हजार रुपए जोड़े कुत्ते उनके पास हैं। दो लाख रुपये लगाकर उनके लिए महल बना हुआ है। उन पर अलग डाक्टर और नौकर है। गर्मियों में उनके घरों में बरफ के टुकड़े और बिजली के पंखे लगते हैं। महाराज के भोजन-छाजन की तो बात ही क्या? उनके नौकरों के नौकर भी घी-दूध में नहाते हैं, और जिस रुपये को इस प्रकार पानी की तरह बहाया जाता है, वह आता कहाँ से है? उसके पैदा करने वाले कैसी जिंदगी बिताते हैं? - वे दाने-दाने को मोहताज है। उनके लड़कों को महाराज बेवकूफ बख्श सिंहके कुत्तों का जूठा भी यदि मिल जाये, तो वे अपने को धन्य समझें।

लेकिन, यदि किसी धर्मानुयायी से पूछा जाय, कि ऐसे बेवकूफ आदमी को बिना हाथ-पैर हिलाये दूसरे की मेहनत की कमाई को पागल की तरह फेंकने का क्या अधिकार है तो पण्डित जी कहेंगे- ''अरे वे तो पूर्व की कमाई खा रहे हैं। भगवान की ओर से वे बड़े बनाये गये हैं. शास्त्र-वेद कहते हैं कि बड़े-छोटे के बनाने वाले भगवान् हैं। गरीब दाने-दाने को मारा-मारा फिरता है, यह भगवान् की ओर से उसको दण्ड मिला है।'' यदि किसी मौलवी या पादरी से पूछिये तो जवाब मिलेगा- ''क्या तुम काफिर हो, नास्तिक तो नहींहो? अमीर-गरीब दुनिया का कारबार चलाने के लिए खुदा ने बनाये हैं। राजी-ब-रजा खुदा की मर्जी में इन्सान को दखल देने का क्या हक? गरीबी को न्यामत समझो। उसकी बंदगी और फरमाबरदारी बजा लाओ, क्यामत में तुम्हें इसकी मजदूरी मिलेगी।'' पूछा जाय-जब बिना मेहनत ही के महाराज बेवकूफ बख्श सिंह धरती पर ही स्वर्ग का आनन्द भोग रहे हैं तो ऐसे 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' के दरबार में बंदगी और फरमाबरदारी से कुछ होने-हवाने की क्या उम्मीद ?

उल्लू शहर के नवाब नामाकूल खाँ भी बड़े पुराने रईस हैं। उनकी भी जमींदारी है और ऐशो-आराम में बेवकूफ बक्श सिंह से कम नहीं है। उनके पाखाने की दीवारों में अतर

चुपड़ा जाता है औग गुलाब-जल से उसे धोया जाता है। सुन्दरियों और हुस्न की परियों को फँसा लाने के लिए उनके सैंकड़ों आदमी देश-विदेशों में घूमा करते हैं। यह परियाँ एक ही दीदाद में उनके लिए बासी हो जाती हैं। पचासों हकीम, डाक्टर, डाक्टर और वैद्य उनके लिए जौहर, कुश्ता और रसायन तैयार करते रहते हैं। दो-दो साल की पुरानी शराबें पेरिस और लंदन के तहखानों से बड़ी-बड़ी कीमत पर मँगा कर रक्खी जाती है। नवाब बहादुर का तलवा इतना लाल और मुलायम की तृप्ति इन्द्र की परियों की जीभ भी ना होगी। इनकी पाशविक काम-वासना की तृप्ति में बाधा डालने के लिए कितने ही पति तलवार के घाट उतारे जाते हैं, कितने ही पिता झूठे मुकदमों में फँसा कर कैदखाने में सड़ाये जाते हैं। साठ लाख सालाना आमदनी भी उनके लिए काफी नहीं है। हर साल दस-पाँच लाख रुपया और कर्ज हो जाता है। आपको G.C.S.I., G.C.I.E., फर्जिन्द-खास फिरंग-आदि बड़ी-बड़ी उपाधियाँ सरकार की ओर से मिली हैं। वायसराय के दरबार में सबसे पहले कुर्सी इनकी होती है और उनके स्वागत में व्याख्यान देने और अभिनन्दन पत्र बढ़ने का काम हमेशा उल्लू शहर के नवाब बहादुर और गदहा-गाँव के महाराजा बहादुर को मिलता है। छोटे और बड़े दोनों लाट, इन दोनों रईसुल उमरा की बुद्धिमानी, प्रबन्ध की योग्यता और रियाया-परवरी की तारीफ करते नहीं अघाते।

नवाब बहादुर की अमीरी को खुदा की बरकत और कर्म का फल कहने में पण्डित और मौलवी, पुरोहित और पादरी सभी एक राय हैं। रात-दिन आपस में तथा अपने अनुयायियों में खून-खराबी का बाजार गर्म रखने वाले, अल्लाह और भगवान् यहाँ बिल्कुल एक मत रखते हैं। वेद और कुरान, इंजील और बायबिल की इस बारे में सिर्फ एक शिक्षा है। खून-चूसने वाली इन जोकों के स्वार्थ की रक्षा ही मानो इन धर्मों का कर्त्तव्य हो। और मरने के बाद भी बहिश्त और स्वर्ग के सबसे अच्छे महल, सबसे सुन्दर बगीचे, सबसे बड़ी आँखों वाली हूरें और अपसराएँ, सबसे अच्छी शराब और शहद की नहरें उल्लु शहर के नवाब बहादुर तथा गदहा-गाँव के महाराजा और उनके भाई-बन्धुओं के लिए रिजर्व है, क्योंकि उन्होंने दो-चार मस्जिदें दो-चार शिवाले बना दिये हैं, कुछ साधु-फकीर और ब्राह्मण-मुजावर रोजाना उनके यहाँ हलवा-पूड़ी, कबाब-पुलाव उड़ाया करते हैं।

गरीबों की गरीबी और दरिद्रता के जीवन का कोई बदला नहीं। हाँ, यदि वे हर एकादशी के उपवास, हर रमजान के रोजे तथा सभी तीरथ-व्रत, हजऔर जियारत बिना नागा और बिना बेपरवाही से करते रहे, अपने पेट को काटकर यदि पण्डे-मुजावरों का पेट भरते रहे, तो उन्होंने भी स्वर्ग और बहिश्त के किसी कोने की कोठरी तथा बची-खुची हूर-अप्सरा मिल जायेगी। गरीबों को बस इसी स्वर्ग की उम्मीद पर अपनी जिन्दगी काटनी है। किन्तु जिस सरग-बहिश्त का अस्तित्व ही आज बीसवीं सदी के इस भूगोल में कहीं नहीं है। पहले जमीन चपटी थी। सरग इसके उत्तर के सात पहाड़ों और सात समुद्रों के पार पर था। आज तो न उस चपटी जमीन का पता है और न उत्तर के उन सात पहाड़ों और सात समुद्रों का। जिस सुमेरु के ऊपर इन्द्र की अमरावती क्षीरसागर के भीतर शेषषायी भगवान् थे, वह अब सिर्फ लड़कों के दिल बहलाने की कहानियाँ मात्र हैं। ईसाईयों और मुसलमानों के बहिश्त के लिए भी उसी समय के भूगोल में स्थान था। आजकल के भूगोल ने तो उनकी जड़ ही काट दी है। फिर उस आशा पर लोगों को भूखों रखना क्या भारी धोखा नहीं है?

(स्रोत : पुस्तक 'तुम्हारी क्षय')

पृष्ठ 5 का शेष

क्रान्तिकारी सरकार के गठन का प्रयास कर रहेहैं, जो जन-शिक्षा के लिए अपने सभी साधनों का इस्तेमाल करेगी जैसा कि आज रूस में हो रहा है। सत्ता पर अधिकार करने के पश्चात रचनात्मक कार्यों के लिए शान्तिपूर्ण तरीके अपनायें जायेंगे और बाधाओं को कुचलने के लिए शक्ति का प्रयोग किया जायेगा। यदि लेखक का यह मतलब है तो हम उससे सहमत हैं और मुझे विश्वास है कि यही उसका मतलब है।

मैंने इस पुस्तक पर विस्तार से चर्चा की है। बल्कि मैंने उसकी आलोचना ही कर डाली है। लेकिन मैं पुस्तक में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए नहीं करने जा रहा हूँ। क्योंकि उसका एक ऐतिहासिक मूल्य है। 1914-15 के क्रान्तिकारियों के यही विचार थे।

मैं विशेष तौर पर नौजवानों के लिए इस पुस्तक की ज़ोरदार सिफ़ारिश करता हूँ लेकिन एक चेतावनी के साथ, कृपया आँख मूँदकर अनुकरण करने के लिए इसे मत पढ़िये। इसे पढ़िये, इसकी आलोचना कीजिये, इस पर सोचिये और इसकी सहायता से अपनी समझदारी करने की कोशिश करिये।

समाज में अंधविश्वास-चरम पर

संतोष

आजादी के करीब सात दशक बाद तथा विज्ञान-तकनीक के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद समाज में अंधविश्वास चरम पर है। 21वीं सदी के वर्तमान दौर में भी, झारखंड समेत देश के कई राज्यों में मौजूद डायन-बिसाही प्रथा एवं डायन हत्या की घटनाएं चिंता पैदा करने वाली हैं। इसकी जड़ें एक ओर ओझा-गुणी, तांत्रिक आदि एवं इसकी आड़ में लाभ उठाने वाले तत्वों तक जाती है, वहीं समाज में मौजूद पुरुष वर्चस्व वाली मानसिकता एवं महिलाओं का संपत्ति में अधिकार का मामला भी इससे जुड़ा है। सत्ता - व्यवस्था के साथ ही समाज के ताकतवर, वर्चस्ववादी समूहों का समर्थन व संरक्षण भी वैसे तत्वों को भरपूर प्राप्त होता रहता है। इसके कारण समाज में अंधविश्वास, कुरीति, लूट एवं पाखंड फैलाने, उसे बढ़ावा देने वाले लोग अक्सर कानून के शिकंजे में फंसने से बच जाते हैं या पकड़ में आने के बाद भी आसानी से छूट जाते हैं। संविधान ने वैज्ञानिक मानसिकता के विकास को नागरिकों का मौलिक कर्तव्य निरूपित किया था पर देश की आजादी के सात दशकों बाद भी परिणाम हम सबके सामने है। प्रस्तुत है इसी तथ्य को रेखांकित करता कोलकाता के पत्रकार एवं विज्ञान संचारक संतोष का यह आलेख

भारत आज शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान आदि क्षेत्रों में क्रमशः तरक्की कर रहा है। विज्ञान व स्वास्थ्य क्षेत्र में आये दिन नई- नई खोजें हो रही हैं । लोगों में जहाँ विज्ञान के प्रति उत्साह बढ़ रहा है वहीं अनेक अंधविश्वास जनता के मन-मस्तिष्क से धीरे धीरे कम होता जा रहा है। यह तो सिर्फ देश के एक हिस्से की छवि है। दूसरे हिस्से की छवि में आज भी अनेक लोग झाड़-फूंक, तंत्रमंत्र, भूत-प्रेत, ओझा- तांत्रिक, अलौकिक घटना, काल्पनिक कहानियों आदि में विश्वास करते हैं और इन सब का फायदा उठाते हुए झाडफूंक, तंत्रमंत्र, ओझा-तांत्रिकों, ज्योतिषियों का ठगी का धंधा फलफूल रहा है। आज भी ओझा, तांत्रिक, बाबा-माताजी झाड़फूंक व तंत्रमंत्र की मदद से किसी भी बीमारी या मानवीय समस्या का समाधान करने का दावा करत रहते हैं। जबकि तंत्रमंत, झाडफूंक, चमत्कारी शक्ति से किसी भी बीमारी से छुटकारा दिलवाने का दावा करना कानूनन जुर्म है। लेकिन मौजूदा कानूनों को ठेंगा दिखाते हुए सिद्धु औलोकिक शक्ति, तंत्रमंत्र या झाड़फूंक से किसी भी बीमारी का इलाज या समस्या का समाधान करने के नाम पर, लूट पाखंडी धंधा चल रहा है।

चमत्कारी चिकित्सा शिविर :

तथाकथित अलौकिक शक्तिधारी एक बाबा तो सिर्फ झाडफूंक से अंधे को रौशनी, गूंगे को बोली और बहरे को श्रवण शक्ति प्रदान करने का दावा तक करता है। सिर्फ दावा ही नहीं बल्कि बाबा का चमत्कारी चिकित्सा शिविर का भी आयोजन किया जाता है। ऐसी ही एक घटना पश्चिम बंगाल के पश्चिम मिदनापुर के दासपुर थानातंर्गत जानापाड़ा की है, जहाँ बाबा पंचानन माइती अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा अंधे, गूंगे और बहरे सहित किसी भी तरह के शारीरिक तथा मानसिक बीमारी छूटकारा दिला रहे थे। इस धंधे में बाबा को दो चेले अरूण गोस्वामी और सुकुमार सामंत मदद करते थे। इस चिकित्सा शिविर में इलाज करवाने के लिए आने वाले हर एक मरीज को 10 रूपये में एक कॉपी दी जाती थी जबकि इस कॉपी का दाम केवल एक रूपय था। उस कॉपी में कलम से कई श्लोक लिखे रहते थे। खुले मैदान में आयोजित चमत्कारी शिविर में इलाज के लिए आये अंधे, गूंगे, बहरे या अपंग जैसे विकलांगों और मरीजों को उस कॉपी में लिखे ईश्वर भक्ति का पाठ करवाया जाता था।

बाबा पंचानन किसी अंधे की आँखों पर हाथ फेरते हुए मंत्र पड़कर उस पर फूंक मारते थे। इसे साथ ही बाबा उस मरीज से कहते है, "देखो तो तुम्हे कुछ दिखाई दे रह है या नहीं।" यदि अंधे ने ना में जवाब दिया तो उस पर बाबा फिर पहले जैसा कारनामा दोहराते । इसके साथ ही बाबा यह तसल्ली देते- "मेरे पास और दो- चार बार आओ, तुम्हें हर चीज साफ दिखाई देगी। तूँ देख सकेगा।" अब एक गूंगे की बारी। किसी गूंगे से बुलबाने के लिए बाबा ने उस गूंगे की जीभ को हाथ से जबरन खींचकर बाहर की ओर निकाला एवं उस जीभ को अपने जीभ से स्पर्ष करा कर गूंगे के मुंह से कुछ बुदबुदाया। और फिर बाबा ने चीख कर गूंगे से कहा- "बोलो माँ, बोलो बाबा।" बाबा के इस कारनामे के बाद भी गूंगा पहले जैसा बेजबान बना इधर - उधर देखता रहा।

बहरे के इलाज में बाबा पंचानन ने किसी बहरे के

कानों में मंत्र पढ़कर उसमें फूंक मारा। बाबा के शिविर में आये अन्य मरीजों का भी पंचानन इसी तरह से चमत्कारी इलाज कर रहे थे। चमत्कारी इलाज के बाद मरीजों से कहा गया कि "बाबा के शिविर में आये लोग और मरीज दानपेटी में 5 से 100 रूपये का अवश्य दान करें।" कुल मिलाकर चमत्कारी इलाज और दान-पुण्य के नाम पर गरीब, लाचार लोगों और मरीजों से मनमर्जी रुपये की वसूली की जाती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की धज्जियाँ उड़ाते हुए सिर्फ तंत्रमंत्र, झाडफूंक और चमत्कार द्वारा अंधे को रौशनी, गूंगे को बोली और बहरे को सुनने की शक्ति प्रदान करने के नाम पर विकलांग लोगों के साथ गंदा मजाक किया जा रहा है। रोग से छूटकारा दिलाने के नाम पर पंचानन बाबा का पाखंडी चिकित्सा शिविर चल रहा था, वहीं अश्चर्य की बात थी कि इस पाखंडी शिविर को बंद करने में आरंभ में पुलिस व प्रशासन ने चुप्पी साध रखी थी।

अंततः 'भारतीय विज्ञान व युक्तिवादी समिति (साइंस एंड रेशनालिस्ट्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया) की ओर से पंचानन बाबा के इस चमत्कारी चिकित्सा शिविर के खिलाफ दासपुर थाने में लिखित शिकायत कर्ज करायी गयी। जिसके आधार पर पुलिस ने गुमखपोता के निवासी बाबा पंचानन माइती और उनके 2 चेले रामदेव के निवासी अरूण गोस्वामी एवं राजनगर के निवासी सुकुमार सामंत को पहले अपने हिरासत में लेकर पूछताछ शुरू की। पूछताछ में ठीकठाक जवाब नहीं मिलने पर पुलिस ने इन तीनों को गिरफ्तार कर लिया। बाबा पंचानन सहित तीनों अभियुक्तों को पुलिस ने घाटाल अदालत में पेश किया, जहाँ से उन्हें हिरासत में भेज दिया गया। पुलिस सूत्रों के अनुसार पंचानन बाबा समेत उनके दोनों चेलों पर औषधि एवं चमत्कारी उपचार आक्षेपाई विज्ञापन अधिनियम, 1954 एवं धारा 417 के तहत मामला शुरू किया गया। अब प्रश्न है, क्या शिकायत मिलने के बाद ही पुलिस व प्रशासन पाखंडी धंधे को कानूनन बंद करने के लिए क दम उठाएगी ? यह घटना सिर्फ एक उदाहरण मात्र है लेकिन आज भी पाखंडी बाबा, ओझा, तांत्रिक, ज्योतिषी के चंगुल में फंसकर अनेक अंधविश्वासी लोग रुपये आदि गंवाने में लगे हुए हैं।

चमत्कार से इलाज करना कानूनन अपराध :

भारतीय कानून में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ताबीज, कबच, ग्रहरत्न, तंत्रमंत्र, झाड़फूंक, चमत्कार, दैवी औषधी आदि द्वारा किसी भी समस्या या बीमारी से छुटकारा दिलवाने का दावा तक करना जुर्म है। तंत्रमंत्र, चमत्कार के नाम पर आम जनता को लूटने वाले ज्योतिषी, ओझा, तांत्रिक जैसे पाखंडियों को कानून की मदद से जेल की हवा तक खिलाई जा सकती है। विडंबना यह है कि आज भी अनेक लोगों को कानून के बारे में सही सटीक जानकारी नहीं है लेकिन एक आम आदमी भी कानून की मदद से धोखेबाज ओझा, तांत्रिक, बाबाजी, ज्योतिषी को जेल की हवा खिला सकता है। यहाँ कुछ जरूरी कानूनों की जानकारियाँ पेश कर रहा हूँ।

औषध एवं प्रसाधन अधिनियम, 1940 :

औषध एवं प्रसाधन अधिनियम, 1940 (ड्रग एंड कॉस्मेटिक एक्ट, 1940) औषधियों तथा प्रसाधनों के निर्माण, बिक्री तथा समवितरण को विनियमित करता है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति या फर्म राज्य सरकार द्वारा जारी उपयुक्त लाइसेंस के बिना औषधियों का स्टाक, बिक्री या वितरण नहीं कर सकता। इस कानून के तहत किसी भी रोग से मुक्ति दिलवाने के दान पर दिये जाने वाले ताबीज, कबच, मंत्र युक्त जल आदि को औषध के रूप में स्वीकार्य होगा। बिना लाइसेंस के औषध के निर्माण बिक्री तथा समविरतण को जुर्म माना जाएगा। इसके अलावा, ताबीज, कबच इत्यादि द्वारा रोग मुक्ति नहीं होने पर या मरीज की मृत्यु होने पर भारतीय दंड संहिता की धारा एस-320 के तहत दोषी को सजा होगी। ध्यान दें- वर्ष 2008 में इस कानून में संशोधन किया गया। अब से इस कानून का उल्लंघन करने वाले को 10 वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक की सजा हो सकती है। साथ ही 10 लाख रुपये तक का जुर्माना भी होगा।

कहां दर्ज करें शिकायत ?

केंद्र या राज्य सरकार के औषध नियंत्रण कार्यालय में औषध से संबंधित शिकायत दर्ज की जा सकती है। यदि किसी ज्योतिषी, तांत्रिक ने किसी समस्या से छुटकारा दिलवाने के नाम पर ताबीज, कबच, ग्रहरत्न आदि दिया हो तो उसे लेकर औषध नियंत्रण कार्यालय में उस ज्योतिष या तांत्रिक के खिलाफ शिकायत दर्ज करायी जा सकती है।

औषधी एवं चमत्कारी (आक्षेपाई विज्ञापन) अधिनियम, 1954 :

औषधि और चमत्कारिक उपचार (आक्षेपणीय विज्ञापन) अधिनियम, 1954 (ड्रग्स एंड मैजिक रेमेडीज (आबजेक्शनबर एडवर्टाइजमेंट) एक्ट, 1954)। आज भी जहां-तहां नीम-हकीमों, तांत्रिकों, रहस्यमय तरीकों से इलाज करने तथा जिन रोगों का कोई इलाज न भी हो उन्हें चमत्कारिक

तरीके से ठीक कर देने वाले लोगों व इन पर विश?वास करने वालों की भारी तादाद है। अधिनियम के तहत तंत्र-मंत्र, गंडे, ताबीज आदि तरीकों के उपयोग, चमत्कारिक रूप से रोगों के उपचार या निदान आदि का दावा करने वाले विज्ञापन निषेधित हैं। इसके अनुसार ऐसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भ्रमित करने वाले विज्ञापन दण्डनीय अपराध हैं जिनके प्रकाशन के लिये विज्ञापन प्रकाशित व प्रसारित करने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त समाचार पत्र या पत्रिका आदि का प्रकाशक व मुद्रक भी दोषी माना जाता है।

इस अधिनियम के अनुसार पहली बार ऐसा अपराध किये जाने पर 6 माह के कारावास अथवा जुर्माने या दोनों प्रकार से दंडित किये जाने का प्रावधान है जबकि इसकी पुनरावृत्ति करने पर 1 वर्ष के कारावास अथवा जुर्माने या दोनों से दंडित किये जाने की व्यवस्था है। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है। ध्यान दें, वर्ष 1963 में इस कानून में संशोधन कर धारा (९ए) जोड़ी गयी। अब से इस कानून का उल्लंघन करना गैर-जमानती अपराध माना चाएगा।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 :

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत कोई व्यक्ति जो अपने उपयोग के लिये कोई भी सामान अथवा सेवाएँ खरीदता है वह उपभोक्ता यानी क्रेता है। जब आप किसी ज्योतिषी, तांत्रिक या बाबा से कोई ताबीज, कबज, ग्रहरत्न खरीदते हैं तो और इससे यदि आपको कोई लाभ नहीं मिलता है तो आप एक उपभोक्ता के रूप में विक्रेता ज्योतिषी, तांत्रिक या बाबा के खिलाफ उपभोक्ता अदालत में मामला दायर कर सकते हैं। इसके अलावा यदि किसी कानून का उल्लंघन करते हुये जीवन तथा सुरक्षा के लिये जोखिम पैदा करने वाला सामान जनता को बेचा जा रहा है तो आप शिकायत दर्ज करवा सकते हैं।

भारतीय दंड संहिता की धारा 420 :

भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत किसी भी व्यक्ति को कपट पूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित कर आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, संपत्ति या ख्याति संबंधी क्षति पहुंचाना शामिल है। यह एक दंडनीय अपराध है। इसके तहत 7 साल तक के कारावास की सजा का प्रावधान है। धर्म, आस्था, ईश्वर के नाम पर ज्योतिषी, तांत्रिक जैसे पाखंडों का सिर्फ और सिर्फ एक ही काम है, अंधविश्वास के दलदल में डूबे लोगों को तन, मन और धन से लूटना। बाबा, ओझा, तांत्रिक सिर्फ और सिर्फ जालसाज हैं। ऐसे जालसाज से ठगी का शिकार बने लोग धारा 420 के तहत शिकायत दर्ज करा सकते हैं।

चमत्कार को 25 लाख रुपये की चुनौती :

युक्तिवादी समिति के अध्यक्ष प्रबीर घोष ने कहा - "अंधविश?वास के जाल में अनपढ़ ही नहीं बल्कि पढ़े-लिखे लोग भी फंसे हुए हैं। अंधविश्वास देश के विकास में भारी रूकावट है। इसके चक्कर में लोग आर्थिक एवं सामाजिक शोषण का शिकार हो रहे हैं। हम 21 वीं सदी में जी रहे हैं। यह युग विज्ञान का है, लेकिन विभिन्न टीवी चैनलों पर कवच , सिद्ध माला, सिद्ध अंगूठी, धन प्राप्ति यंत्रों का व्यापक अन्धविश्वास के नाम पर, पाखंडी ओझा, तांत्रिक, बाबाओं, ज्योतिषियों का धंधा चल रहा है। जिसका खतरनाक प्रभाव देश के भविष्य करोड़ों बच्चों पर पड़ रहा है।

टोटका, तंत्रमंत्र आदि कमजोर दिमाग की उपज है। कोई व्यक्ति जब विभिन्न रोग से बीमार होता है, तब उनके परिवार के लोगों की मानसिक स्थिति ठीक नहीं रहती है क्योंकि वे अपने परिजनों को स्वस्थ करने के लिए एक जगह से दूसरी जगह ले जाकर परेशान हो जाते हैं। वे चाहते हैं कि किसी भी कीमत पर उनका परिजन स्वस्थ्य हो जाए। इसलिए वे इसी तरह के धोखेबाज बाबाओं के चंगुल में आसानी से फंस जाते हैं।" घोष ने कहा, ' 'मैं ने और मेरी समिति ने कई सौ बाबाओं, ओझाओं, ज्योतिषियों की पोल खोली है, जबकि कई बाबाओं को जेल की हवा तक खिलाई है।" चमत्कारी शक्ति का दावा करने वालों को 25 लाख रुपये की चुनौती देते हुए प्रबीर घोष ने कहा कि यदि कोई भी ओझा, तांत्रिक, बाबा, ज्योतिषी यदि उनके सामने चमत्कारी शक्ति का प्रमाण पेश करने में सक्षम हो जाए, तो वे उन्हें 25 लाख रुपये देंगे और समिति का कामकाज बंद कर दिया जाएगा।"

उन्होंने कहा, ' 'मेरा आम लोगों के लिए यह संदेश है कि वे चमत्कार में विश्वास नहीं करें। चमत्कार के नाम पर किसी भी समस्या से मुक्ति दिलवाने का दावा करने वाले बाबा, ओझा, तांत्रिक सिर्फ और सिर्फ जालसाज हैं। ऐसे जालसाजों से दूर रहें। यदि आप को कहीं पर चमत्कार के नाम पर किसी बाबा का धंधा चलता हुआ दिख जाए तो उसके खिलाफ थाने में शिकायत दर्ज कराएं। इस काम में युक्तिवादी समिति आपके साथ है।

(पत्रकार एवं विज्ञान संचारक तथा संप्रति भारतीय विज्ञान एवं युक्तिवादी समिति, कोलकाता, पश्चिम बंगाल के उपाध्यक्ष हैं)

हरिद्वार 'धर्म संसद'

एस. वी. सिंह

'हिन्दू स्वाभिमान' की रक्षा और हिन्दू युवाओं को 'आत्म रक्षा' के लिए 'धर्म सेना' के गठन के उद्देश्य से हरिद्वार में 16 से 19 दिसम्बर को 'धर्म संसद' का आयोजन हुआ। इस जमावड़े में दिए गए ज़हरीले बयानों की बानगी से ही शुरूआत करनी होगी।

''शस्त्रमेव जयते, मुस्लिमों के आर्थिक बहिष्कार से काम नहीं चलेगा उनका सफाया करना पड़ेगा, तलवारें मंचों पर ही अच्छी लगती हैं। ये लड़ाई बेहतर हथियारों वाले ही जीतेंगे, तलवारों से भी काम नहीं चलेगा, हिन्दुओं को हथियारों के मामले में खुद को अपडेट करने की ज़रूरत है, तलवारों के साथ दूसरे हथियार भी उठाने पड़ेंगे। म्यांमार की तर्ज़ पर मुस्लिमों नस्लीय कत्लेआम होना चाहिए, सफाई अभियान चलाना पड़ेगा, संविधान बदल दिया जाना चाहिए, महात्मा गाँधी को नहीं बल्कि नाथूराम गोडसे को नायक बनाया जाना चाहिए, युवाओं को अपने हाथों से किताबें-कॉपियां फेंककर शस्त्र उठा लेने चाहिएं, 20 लाख लोग मरेंगे तब समझ आएगा हिन्दू क्या है, या तो खुद मरने को तैयार रहो या मारने को तैयार रहो दूसरा कोई विकल्प नहीं हैं, मैं संसद में होती तो मनमोहन सिंह को गोली मार देती, जिसने भी क़ुरान समझा हुआ है, वो जिहादी है और हिन्दुओं को हथियार उठाने होंगे और ज़िहादी का सफ़ाया करना होगा। हथियार उठाओ, युद्ध करो, 'क्या सब तैयार हैं,' बोलो तैयार हैं या नहीं?''

दस आयोजकों और ज़हरीले वक्ताओं जिनके नाम हरिद्वार के ज्वालापुर थाने में एफ. आई. आर. में दर्ज हैं उनके नाम इस तरह हैं ; वसीम रिज़वी उर्फ़ जीतेन्द्र नारायण त्यागी, प्रबोधानंद गिरी, यति नारासिन्हानंद उर्फ़ दीपक त्यागी, पूजा शकुन पाण्डेय अन्नपूर्णा देवी, सिन्धु सागर, धर्मदास, परमानन्द, आनंद स्वरूप अश्वनी उपाध्याय, सुरेश चौहानके (सुदर्शन टी वी)।

हरिद्वार केबाद 20 दिसम्बर को दिल्ली, 26 दिसम्बर को रायपुर और 2 जनवरी को गाज़ियाबाद में वैसे ही जमावाड़े आयोजित हुए जिनमें बिलकुल हरिद्वार की तरह ही मुसलमानों के नरसंहार, गोडसे द्वारा गाँधी की हत्या को उचित ठहराना और भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित करते हुए मौजूदा संविधान का भगवाकरण करने का प्रण लिया गया। *''ऐलान हरिद्वार से हो चुका है अब हिन्दुओं को किस बात का इन्तेज़ार है? मोदी ने नारा दिया है स्वच्छ भारत, हमारा, नारा है पवित्र भारत। हम जेहादियों को मारकर भारत भूमि को पवित्र बनाएँगे।''* इसके बाद 23 जनवरी को अलीगढ़ और उसके बाद देश भर में अनेकों जगह वैसी ही 'धर्म संसदें' आयोजित होने का ऐलान हो चुका है।

न्यायलय की न्यायाधीश अंजना ओम प्रकाश और पत्रकार कुरबान अली की याचिका पर संज्ञान लेते हुए सुप्रीम कोर्ट ने एस.आई. टी. का गठन किया है।

इस बार हरिद्वार में एक नया प्रयोग आज़ामाया गया है। पहले ये मुस्लिम विरोधी, संविधान विरोधी, महिला विरोधी, दलित विरोधी ज़हर उगलने के बाद गिरफ़्तारी से बचने के लिए कैमरे के सामने अपने बयान से मुकर जाते थे और पुलिस प्रशासन की कोई कार्यवाही ना करने का बहाना दे दिया करते थे लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ। ये पहली बार हुआ कि मुसलमानों का नरसंहार करने, 20 लाख लोगों को मार डालने, नस्ली नरसंहार (Racial cleaning) का आह्वान और युवाओं को हथियार उठाने के लिए भड़काने के बाद कैमरे-रिकॉर्डर के सामने और हरिद्वार से वापस अपने-अपने अड्डो, अखाड़ो मे पहुँचकर भी बिल्कुल उन्ही बातों को दोहराया गया है। सलिप्त अपराधी की भांति पहले तो उत्तराखंड पुलिस पूरी बेशर्मी से ये कहती रही है कि 'हम घटना पर नज़र जमाए हुए हैं' मानो कह रहे हों कि वे चौकस हैं कि लेकिन बाद में कार्यवाही का दिखावा करते हुए रिज़वी ऊर्फ़ त्यागी को आरोपी बनाया गया, उसके बाद अनमने ढंग से कुछ नाम जोड़े गए और अंत में 'जाँच' के लिए एक पांच सदस्यीय एसआईटी नियुक्त कर दी गई है। नरसंहार का खुला ऐलान करने वाले अपने बयानों पर क़ायम है।

नरसंहार (Genocide) का आह्वान करना भी मानवता के विरुद्ध वैसा ही जघन्य अपराध है जैसा नरसंहार

करना

जीनोसाइड/ नरसंहार (ethnic cleaning) शब्द फासिस्टें के इटली और जर्मन की देन है। जेनोसाइड शब्द को पहली बार पोलैंड के वकील रफेल लेमकिन ने अपनी पुस्तक 'Axis Rule in Occupied Europe' में इस्तेमाल किया था। कृपया याद रखें, पोलैंड की नाज़ी ज़ुल्मों की सर्वोच्च भयावहता को झेला था। ग्रीक शब्द 'genos' का अर्थ है 'cide' का अर्थ है 'मार डालना'। समूची नस्ल को ही मार डालना, सिर्फ इसीलिए कि वे लोग उक्त नस्ल वाले होते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने जेनोसाइड/नरसंहार को 1946 में अलग सबसे गंभीर प्रकार का अपराध घोषित किया और 1948 में पेरिस में जेनोसाइड कन्वेंशन हुई जिसमें दुनियाभर के 149 देशों ने भाग लिया जिमें भारत भी था। जेनोसाइड को मानवता के विरुद्ध अपराध घोषित करते हुए एक विशेष प्रस्ताव पारित हुआ जिसे उन देशों पर भी लागू माना गया जिन्होंने उस कन्वेंशन में भाग नहीं लिया था और उस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। कन्वेंशन के आर्टिकल II में जेनोसाइड को इस तरह परिभाषित किया गया, ''किसी भी राष्ट्रीयता, नस्ल, जातीयता अथवा धार्मिक समूहों को सम्पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से समाप्त करने के लिए निम्न में से कोई भी एक या एक से अधिक कार्य करना'':

A) किसी समूह के सदस्यों की हत्या करना
B) किसी समूह के सदस्यों की गंभीर मानसिक अथवा शारीरिक आघात पहुँचाना।
C) किसी भी समूह के सम्बन्ध में जान पूछकर, सोच समझकर ऐसी परिस्थिति निर्मित करना जिससे वह समूह पूरे का पूरा अथवा आंशिक रूप से नष्ट हो जाए।
D) ऐसे उपाय करना जिससे उक्त समूह में आगे बच्चे पैदा होने ही बंद हा जाएँ।
E) उक्त समूह के बच्चों को ज़बरदस्ती छीनकर दूसरे समूह को सोंप देना।

कन्वेंशन के तहत दुनिया का हर देश, वो भी जिन्होंने 1948 में इस पर दस्ताखत नहीं दिए थे, जेनोसाइड के जघन्य अपराध में लिप्त लोगों या समूहों पर कठोर कार्यवाही करने को बाध्य होगा और अगर वो ऐसा नहीं करता है तो उस देश के विरुद्ध पीड़ित समूह या उस समूह की तरफ से कोई भी व्यक्ति न्याय के अंतर्राष्ट्रीय न्यायाल (International Court of Justice, Hague) में जा सकता है। हरिद्वार में 17, 18 और 19 दिसम्बर को हुई जहरीली संसद में जितने लोगों ने भी भाषण दिए वे सब जेनोसाइड कन्वेंशन की धारा B और C के तहत मानवता के विरुद्ध एक जघन्य अपराध के कसूरवार हैं।

26 दिसम्बर को सुप्रीम कोर्ट के 76 सुविख्यात वकीलों ने देश की एकता अखंडता को गंभीर खतरा पैदा हो गया है बल्कि सारे मुस्लिम समुदाय की जान खतरे में है। ये भाषण कोई अकेली घटना नहीं है बल्कि एक विस्तृत घिनौनी श्रंखला का हिस्सा है। सुप्रीम कोर्ट को तुरंत स्वतं: संज्ञान (suo moto) लेते हुए कठोर कार्यवाही करनी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकील प्रशांत भूषण ने भी सुप्रीम कोर्ट में जन हित याचिका दायर कर कहा, ''हरिद्वार 'धर्म संसद' में मुस्लिम समाज के नरसंहार के लिए हिन्दू युवाओं को आह्वान करने वाले और 'धर्म संसद' आयोजित करने वाले पुलिस और न्यायव्यवस्था की परवाह क्यों नहीं करते? क्योंकि वे जानते हैं कि सरकार और पुलिस उनके साथ है। असलियत में ये सरकार की भागीदारी से हुआ है।'' उन्होंने कहा कि देश के हर ज़िले में 'भाई-चारा कौंसिल' गठित हों। सुप्रीम कोर्ट से प्रार्थना की कि इस ज़हरीले ज़मावाड़े में भाग लेने वालों और आयोजकों की तुरन्त यू.ए.पी.ए. के तहत गिरफ्तारियां हों। 7 जनवरी को देश के 183 शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, प्रोफैसरों और विद्वानों ने, जिनमें आई. आई एम. अहमदाबाद और बैंगलोर के प्राध्यापक भी शामिल हैं, प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा कि आपकी चुप्पी हृदयविदारक हैं, नफरतियों-उन्मादियों के हौसले बढ़ा रही है। ये लोग संविधान की भावनाओं को कुचल डाल रहे हैं और समाज को खण्ड-खण्ड करने पर उतारू हैं, उन्हें देश के कानून का बिल्कुल भय नहीं है।

मठों, अखाड़ों, आश्रमों के पास इतना अकूत धन आ कहाँ से रहा है?

हरिद्वार, दिल्ली, गाज़ियाबाद और रायपुर में भगवे कपड़े पहने आग उलगते ज़हरीले मठाधीशों को पहचानना आसान है लेकिन इनके असली आकाओं, सूत्रधारों तक पहुंचना मुश्किल है और उसके बगैर इस रोग को समूल नष्ट नहीं किया जा सकता। रजनी पाम दत्त ने फासीवाद का बहुत वस्तुगत अध्ययन किया था जो आज भी सटीक है।

''चीखते-चिल्लाते उन्मादियों, गुंडों, शैतानों और स्वेच्छाचारियों की यह फौज जो फासीवाद के ऊपरी आवरण का निर्माण करती है, इसके पीछे वित्तीय पूंजीवाद के अगुवा बैठे हैं

शेष पृष्ठ 25 पर

केस रिपोर्ट

और पीर का डर दूर हो गया

बलवंत सिंह लेक्चरार
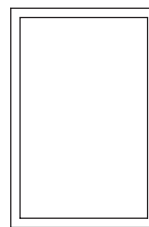
जसविन्द्र कौर पिछले लम्बे समय से परेशान थी। गुरबाज सिंह एवं जसविन्द्र कौर की शादी के 25 वर्ष बाद भी जब उन्हें संतान का सुख नही मिला तो अन्त में थक हार कर उन्होंने नई वैज्ञानिक तकनीक आईवीएफ की सहायता ली, जिस से उनके घर में एक पुत्री ने जन्म लिया था। गुरबाज सिंह की कुल तीन एकड़ जमीन थी। इसमें से उन्होंने अपनी जरूरतों को देखते हुए दो एकड़ जमीन बेच दी थी। जमीन बेच कर कुछ राशि तो आईवीएफ करवाने के लिए खर्च हो गई और शेष बची राशि से गांव में अपना मकान एवं एक दुकान का निर्माण करवा लिया तथा कुछ राशि कर्ज के रूप में पिछली बची हुई देनदारियों को उतारने में खर्च हो गई। आईवीएफ तकनीक से पूर्व वे संतान सुख की प्राप्ति के लिए अनेकों बाबाओं, तांत्रिकों-मांत्रिकों, पंडों-पुजारियों, मुल्ला-मौलवियों के पास जाते रहे थे। इसके साथ-साथ उन्होंने पुजारियों के कहने पर अपने घर में हवन भी करवाए। वे वडभाग सिंह के चेलों के निर्देश पर कई बार धौलीधार जा कर सनान एवं पूजा-प्रार्थना भी कर आए थे, परंतु फल की प्राप्ति विज्ञान की आधुनिक तकनीक आई.वी.एफ. से ही हुई थी। पहले जब वे बाबाओं, तांत्रिकों एवं पीर के भगतों के पास अपनी समस्याओं के समाधान के लिए जाया करते थे तथा बाबाओं, भगतों एवं तांत्रिकों के कथन को कोई इलाही-हुक्म माना करते थे उसी दौरान एक पीर की दरगाह पर संतान प्राप्ति की चाहत में कई साल तक जा कर अपना माथा रगड़ते रहे थे। उसी दौरान उस पीर के भगतों ने अपने देखरेख में उनकी जमीन पर ट्यूबवेल के समीप पीर की एक तुरबत बनवा दी थी और उन्हें प्रत्येक बृहस्पति वार को उस पर दीया जला कर मन्नत पूरी करने की अरदास करने की ताकीद कर दी थी। तब से वे प्रत्येक बृहस्पतिवार को पीर की उस तुरबत पर दीपक जलाते चले आ रहे थे। परंतु कुछ वर्ष पूर्व उन दोनों के रिश्तेदारी में ब्याह-शादी के कार्यक्रम में घर से कई दिनों के लिए बाहर रहना पड़ गया। इस दौरान आने वाले बृहस्पति वार को वे उस पीर की तुरबत पर दीया नहीं जला सके। इसी प्रकार कुछ समय के पश्चात् फिर से किसी ऐसी ही मजबूरी के कारण तीन-चार बार बृहस्पतिवार के दिन पीर की तुरबत पर दीया नहीं जला सके।

उसके कुछ दिन बाद जसविन्द्र कौर की तबियत बिगड़ गई। रात को सपने में उसे पीर डराता हुआ दिखाई दिया। उसे लगा कि जैसे पीर कह रहा हो कि-तुमने मेरी तुरबत पर दीया न जला कर बहुत बड़ा गुनाह कर दिया है, अब उनके परिवार को इस का दण्ड भुगतना पड़ेगा।

वह डर कर उठ कर बैठ गई और फिर सारी रात उसे नींद नहीं आई। सुबह उठ कर देखा तो उसे बहुत तेज बुखार आ रहा था। डाक्टर से दवाई लेने के बाद भी उसे आराम नहीं आ रहा था। अब उसके मुंह से पीर बोलने लग गया कि 'तुमने मेरी मज़ार पर दीया नहीं जलाया, अब मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा।'

अब उन पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा था। उसके पति गुरबाज सिंह के लिए अब दोहरी समस्या हो गई थी। अपनी पत्नी की सेवा संभाल के कारण उसकी दुकानदारी खत्म होती चली जा रही थी। वह अपनी पत्नी को लेकर कभी डाक्टरों के पास तो कभी बाबाओं के पास चक्कर काटने के लिए मजबूर था। अब कई बार जसविन्द्र के मुंह से उसका मृतक जेठ बोलने लग जाता, फिर वह सिर घुमा कर खेलना शुरू कर देती। फिर सिर घुमाते-घुमाते वह बेसुध होकर गिर पड़ती। तथाकथित पीर की दहशत के चलते वे रोजाना ही पीर की तुरबत पर दीपक जलाने लग गये थे, परंतु उनकी समस्या बढ़ती ही चली जा रही थी। बाबाओं, तांत्रिकों, पीर के भगतों एवं ओझाओं के पास जा-जा कर वे पूरी तरह से थक चुके थे। बाबाओं की चौकियों पर वहां के सुगंधित अगरबत्तियों वाले वातावरण के प्रभाव में तथा अन्य मनोरोगियों को सिर घुमा कर खेलते हुए देखकर जसविन्द्र को भी सिर घुमाने की आदत पड़ चुकी थी। उसके सिर घुमाने से गुरबाज सिंह और अधिक परेशान हो चुका था। इसी दौरान उनके एक परिचित ने उनकी समस्या देख कर मेरे पास रविवार को लगने वाले मनोरोग परामर्श कैम्प में भेज दिया।

मैंने उन दोनों को अपने सामने बिठा कर उन्हें अपनी व्यथा सुनाने के लिए कहा तो जसविन्द्र ने एकदम से सिर घुमा

कर खेलना शुरू कर दिया तथा पीर की आवाज़ में उसको अपने साथ ले जाने की धमकियां देना शुरू कर दिया। मैंने जब उसकी नाक को पकड़ कर सख्त लहजे में उसे शांत हो जाने का निर्देश दिया तो वह चुपचाप शांति के साथ बैठ गई। तब गुरबाज सिंह ने शुरू से अन्त तक अपने घर की सारी व्यथा कह कर सुना दी। उनकी व्यथा सुनने के पश्चात् मैंने जसविन्द्र कौर के मन से मनोवैज्ञानिक काऊंसलिंग के द्वारा तथाकथित पीर एवं भूत-पेतों की दहशत को दूर कर दिया। जब उसे सम्मोहक नींद से उठाया गया तो वह अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दे रही थी। उसके बाद तीन-चार बारी उसे मनोरोग परामर्श केन्द्र पर बुला कर मनोवैज्ञानिक काऊंसलिंग द्वारा उसका मनोबल बढ़ाया। तब से उसके मन से तथाकथित भूत-प्रेतों एवं पीरों की दहशत हमेशा के लिए दूर हो गई।

कारणः

भारत में इस्लाम धर्म के प्रवेश करने के पश्चात् मुस्लमान शासकों द्वारा राजनीतिक शक्ति अपने हाथ में लेने पर भारतीय समाज में भी इसका विशेष प्रभाव पड़ा। हिन्दु धर्म में वर्ण व्यवस्था की बुराइयों के कारण निम्नवर्ग के लोगों का झुकाव इस्लाम के तरफ होने लग गया। कई मुस्लमान शासकों ने अपने राजनीतिक प्रभाव से तथा अनेक प्रकार के अन्य लालच देकर इस्लाम धर्म के फैलाव में अपना योगदान दिया था। परंतु इन सबसे अधिक सूफी संतों ने भारतीय समाज की मानसिकता को समझ कर, जाति-पाति की बुराई पर प्रहार कर के मानवतावाद की भावना का प्रचार प्रसार किया। इस मानवतावादी एवं समानता के संकल्प से प्रभावित हो कर हिन्दू समाज के निम्न वर्ग के काफी बड़ी संख्या के लोगों ने इस्लाम धर्म को अपना लिया था। उन प्रभावशाली सूफी संतों की मुस्लिम लोगों के साथ-साथ हिन्दू धर्म के लोगों में भी बहुत बड़ी मान्यता थी। सूफी संतों की स्मृति में भारतवर्ष के अनेक स्थानों पर सूफी संतों की दरगाहों का भी निर्माण करवाया गया। इन दरगाहों पर समय-समय पर उर्स एवं मेलों का आयोजन किया जाता रहा है। वे सूफी संत वाकई में हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं समाज में भाईचारे को बढ़ाने का कार्य करते रहे हैं। इसीलिए सभी धर्मों के लोगों में उनके प्रति सम्मान की भावना वर्तमान समय में भी विद्यामान है। ऐय्याशी के लिए समाज के भोले-भाले लोगों के मनों पर इन कथित पीरों को एक बिगड़ैल थानेदार की भांति पेश किया जाता है। ये लोग साधारण लोगों की कमजोर मानसिकता का फायदा उठा कर उनके घर में आसपास उन से कहीं न कहीं किसी पीर की तुरबत बनवा देते हैं तथा उस कथित पीर को शांत करने के नाम पर मोटा चढ़ावा ले जाते हैं, साथ ही प्रत्येक बृहस्पति वार उस दीपक जलाने की ताकीद कर जाते हैं। साधारण गृहस्थी में परिवार जनों में से किसी न किसी से कोई भूल हो ही जाती है, फिर उस भूल को बख्शवाने के नाम पर भी ये लोग चढ़ावे के नाम पर उनको लूटने में प्रयासरत रहते हैं।

संबंधित मामले में भी गुरबाज सिंह एवं उसकी पत्नी की मानसिक कमजोरी को भांप कर किसी पाखण्डी ने उनके ट्यूबवैल के समीप पीर की एक तुरबत का उनसे निर्माण करवा कर उस पर प्रत्येक बृहस्पतिवार को नियमित रूप से दीपक जलाने की ताकीद कर दी थी। यद्यपि तुरबत बनवाने तथा लगातार हर हफ्ते उस पर दीपक जलाने के पश्चात् भी उनके घर में संतान पैदा नहीं हुई थी। उनके घर में संतान तो पैदा हुई परंतु वैज्ञानिक तरीका अपनाने से अर्थात आईवीएफ से। परंतु अंधविश्वासी मानसिकता होने के कारण वे पीर की उस तुरबत पर दीपक फिर भी नियमित तौर पर लगाते चले आ रहे थे। बाद में एक रिश्तेदारी में शादी-ब्याह में व्यस्त रहने के कारण बीच-बीच में किसी-किसी बृहस्पति को पीर की उस तुरबत पर दीपक नहीं जला सके थे। कमजोर मानसिकता के कारण जसविन्द्र कौर को एक रात उसके अवचेतन मन में बैठी हुई उसकी कल्पना ने सपने में एक डरावने पीर का रूप धारण कर लिया। कमजोर मानसिकता के कारण वह अत्यधिक भयभीत हो गई, और इसे पीर की नाराजगी समझने लग गई। फिर पीर को मनाने के नाम पर उन्होंने पीर के भगत को काफी सामान एवं धन-राशि भी दान के रूप में दे दी, परंतु कथित पीर उसकी कमजोर मानसिकता पर हावी हो चुका था। अतः वह अपने मुंह से पीर की आवाज में बातें करने लग गई। जब पीर के भगत से मामला नहीं सुलझा तो वे अन्य बाबाओं की चौकियों पर जाने के लिए मजबूर हो गये। वहां पर अन्य लोगों को सिर घुमा कर खेलते हुए देख कर कमजोर मानसिक स्थिति के कारण जसविन्द्र कौर ने भी उनकी भांति सिर घुमा कर खेलना शुरू कर दिया।

समय पर मनोवैज्ञानिक काऊंसलिंग द्वारा उसकी समस्या का समाधान करने के पश्चात् जसविन्द्र कौर के अवचेतन मन में से तथाकथित पीर की दहशत हमेशा के लिए दूर हो गई।

94163 24802

भारत में अंधविश्वास की जड़े

नवजोत पटियाला

अंधविश्वास भारतीय समाज की रग-रग में समाये हुए हैं, कहीं-कहीं पर इसका प्रकटावा साफ-स्पष्ट रूप में होता है तथा कहीं पर कम प्रत्यक्ष रूप में। दिव्य अदृश्य, परा-भौतिक शक्तियों में विश्वास, भूत-प्रेत निकालना एवं निकलवाना, बाबाओं से पुच्छा लेना, अपनी इच्छा पूर्ति के लिए जानवरों को किसी विशेष दिन पर विशेष प्रकार का भोजन तैयार करके देना, ताबीजों का बनवाना किसी विशेष दिन पर मांसाहारी भोजन का सेवन न करना, विशेष दिन पर केशों को न धोना, जादू-टोने पर विश्वास इत्यादि अंधविश्वासों के अनेक ढंग'-तरीकों के प्रकटावे जो हमारे भारत समाज में दिन-प्रतिदिन देखने को मिलते हैं, गिनाये जा सकते हैं।

सिद्धांत अनुसंसधान केंद्र द्वारा हाल ही में किये गये एक नमूना सर्वेक्षण में यह बात सामने आई थी कि भारत वर्ष की लगभग आधी आबादी फरिश्तों एवं प्रेत-आत्माओं में, 38 प्रतिशत पुनर्जन्म में, 76 प्रतिशत कर्म के सिद्धांत में तथा 70 प्रतिशत भाग्य में विश्वास रखती है तथा ये विश्वास हिन्दू, मुस्लिम, सिख एवं ईसाई सभी धर्मों के लोगों में पाये जाते हैं। इस के अतिरिक्त भी कितने ही अन्य सूक्ष्म रूपों में अंधविश्वास हमारे समाज में जड़ जमाए हुए बैठे हैं। विश्वविद्यालय में विचरते हुए साधारणतय: बात कानों में पड़ जाती है कि अनपढ़ लोग जिन तक शिक्षा एवं विज्ञान पहुंच नहीं हो सकी, वे ही इन अंधविश्वासों का शिकार होते हैं। परन्तु तथाकथित शिक्षित लोगों, प्रोफेसरों, वैज्ञानिकों में भी अंधविश्वासों की जड़ काफी गहरी है, बस उसका प्रकटीकरण अधिक सूक्ष्म होता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी विद्यार्थी की कोई परीक्षा बहुत अच्छी हो तो वह इसे उसी परीक्षा में प्रयोग किये गये किसी खास पेन अथवा किसी खास कंपनी के पेन के साथ जोड़ लेता है अथवा लेती है तथा फिर शेष सभी परीक्षाएं भी उसी पेन के साथ देते हैं। विद्यार्थियों की बात छोड़ो, इनके 'अक्लमंद' अध्यापक भी ऐसे कई विश्वासों का बोझा ढो रहे हैं। मेरी परिचित एक अध्यापिका, जब भी उसकी प्रमोशन से संबंधित कोई इंटरव्यू हो अथवा अन्य कोई आवश्यक कार्य होता वह एक विशेष रंग के कपड़े पहन कर ही आती है क्योंकि उसके अनुसार यह रंग डालने से उस का काम बन जाता है और तो और भारत में कुतर्क की जकड़ी इतनी मजबूत है कि यहां पर बहुत से विज्ञानी एवं डाक्टर भी अपना कार्य शुरू करने से पूर्व हवन, पाठ, पूजा अथवा कोई अन्य रस्म अवश्य करवाते हैं। वर्ष 2019 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्था के एक पुराने अधिकारी ने बताया था कि संस्था के कई वैज्ञानिकों के द्वारा न केवल राकेट इत्यादि को अंतरिक्ष में छोडने से पूर्व विभिन्न प्रकार के कर्मकांड किये जाते हैं बल्कि अंतरिक्ष में राकेट को छोड़ने के समय को भी रीति रिवाजों वाले 'शुभ समय' के अनुसार निर्धारित किया जाता है। भारत में राजनीतिज्ञों के कर्मकांडों के प्रति रवैये से तो सभी जानकार है ही। सन् 2018 में भाजपा द्वारा दिल्ली में सप्ताह भर का यज्ञ करवाया गया था जिस में 108 पण्डाल बनाये गये थे तथा 1111 पुजारियों ने शमूलियत की थी। पूजा-पाठ, हवन को तो छोड़ो, भारत के कई बड़े-बड़े राजनेता अपने विरोधियों पर जादू-टोना करवाने के लिए तांत्रिकों-बाबाओं के पास जाते रहे हैं। भाजपा के सत्ता में आने के साथ राजनेताओं द्वारा ऐसे हवन, को खुलेआम करने की संख्या में बहुत बड़ी वृद्धि हुई है तथा कई नकली वामपंथी पार्टियों के नेता भी ऐसे कार्यक्रमों में सम्मिलित होते रहे हैं। आर.एस.एस.-भाजपा के सत्ता में आने पर केवल राजनेताओं में ही इन चीजों का उभार देखने को नहीं मिला बल्कि समस्त समाज में ही इस चीज को न केवल बढ़ावा दिया जा रहा है बल्कि इसको वैज्ञानिक सिद्ध करने की कोशिश भी शिखर पर है। कोरोना पूर्णबन्दी के समय थालियां एवं तालियां बजा कर, तरंगों पर ऊर्जा पैदा करके कोरोना को भगाने से संबंधित आर.एस.एस. -भाजपा के आई-टी सेल के 'तर्क' तो सभी को याद होंगे।

इन अंधविश्वासों एवं इन पर आधारित समस्त कर्मकांडों, रीति-रिवाजो को एक समान समझना भी नासमझी होगी। कई अंधविश्वासों के प्रकटाने जैसे कि एक ही पेन से सभी परीक्षाओं का देना, महत्त्वपूर्ण अवसरों पर एक ही रंग के वस्त्र पहनना, दुकान का उद्घाटन करने से पूर्व नारियल फोड़ना इत्यादि चाहे तार्किक एवं वैज्ञानिक चेतना के निर्माण में एक

रुकावट तो अवश्य हैं परंतु यह सीधे सीधे किसी अन्य व्यक्ति को हानि नहीं पहुंचा रहे। इस से अलग कुछ ऐसे अंधविश्वास भी हैं जिनके परिणाम स्वरूप दूसरों को आर्थिक, सामाजिक तथा यहां तक कि जान का नुकसान भी झेलना पड़ सकता है। उदाहरण के तौर पर प्राय: देखा जाता है कि समाज में किसी पुरुष अथवा महिला का इस कारण सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है क्योंकि लोगों के अनुसार वह टोना अथवा काला जादू करता अथवा करती है। इस किस्म के दूसरों को सीधे रूप में हानि पहुंचाने वाले अंधविश्वासों का सब से भद्दा रूप है, मानव बलि, एक ऐसी अमानवीय रस्म जिसका अस्तित्व वर्तमान में भी हमारे समाज में मौजूद है, आश्चर्यजनक बात है कि कितने ही मनुष्यों विशेषतौर महिलाओं की मानव बलि अथरा प्रेतात्मा के प्रभावाधीन होने के संदेह के कारण की गई हत्या के पश्चात् भी राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो इससे संबन्धित कोई आंकड़े एकत्र नहीं करता, जिस के कारण इन हत्याओं का ठीक से अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। वर्ष 2013 से राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो ने इनसे संबंधित आंकड़े एकत्र करना शुरू किया था, परंतु ये आंकड़े केवल दो वर्ष तक ही एकत्र किये गये। इन दो वर्षों में ही ऐसी हत्याओं के हजारों मामले सामने आए। उसके पश्चात ब्यूरो द्वारा ऐसे आंकड़े एकत्र करना बन्द कर दिये गये। यही नहीं काला जादू अथवा प्रेतात्मा के नाम पर की जाने वाली हत्याएं, मानव बलि आदि के विरुद्ध भारत के अधिकतर प्रांतों में तो प्रभावशाली कानून ही नहीं हैं, जहां पर कोई कानून है वहां पर उसे लागू करने का कोई पुखता प्रबंध नहीं है। जितनी भी खबरें आमतौर पर इससे संबंधित सुनने को मिलती हैं, उससे आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इन कारणों के कारण आज भी हजारों ही लोगों एवं खासतौर पर लड़कियों/महिलाओं को हर वर्ष बेइज्जती, अत्याचार झेलना पड़ता है तथा हजारों ही लोगों की हत्या कर दी जाती है। पिछले समय में संघ की विचारधारा की बहुतायत में घुसपैठ के कारण इस घटनाक्रम में बढ़ौतरी ही हुई है।

इस समस्त घटनाक्रम की वर्तमान हालत को समझने के लिए थोड़ा इतिहास का सफर तय करना जरूरी है। मानव समाज में वर्गों के उत्पन्न होने पूर्व आदिकालीन समाज में जब मानव मुख्य रूप में शिकार करने एवं कंदमूल एकत्र करने पर आधारित था। उसी दौरान मिथों, भंति-भांति के जादू-टोनों एवं रस्मों इत्यादि की शुरूआत हो चुकी थी। मानव अभी प्राकृतिक शक्तियों एवं प्रक्रियाओं के लगभग पूर्णत: अधीन था। हवा के चलने, आंधी तूफान के आने, वर्षा के होने आदि की पीछे वह किसी अदृश्य शक्ति की सरगर्मी देखता था।

यही नहीं शिकार, कंदमूल की अनिश्चितता, इनके मनुष्य को हासिल होने अथवा न होने के पीछे भी वह अदृश्य शक्तियों की सरगर्मी ही देखता था। प्राकृतिक शक्तियों के सामने बेबस होने के कारण इस समय मानव इन आत्माओं को भी ज्यादातर प्राकृतिक प्रक्रियाओं एवं जानवरों से संबंधित ही मानता था। भांति-भांति के टोने, रस्में इत्यादि प्रकृति की प्रक्रियाओं, जानवरों, पक्षियों आदि को वश में करने की इच्छा से की जाती थी क्योंकि मनुष्य अभी इन चीजों की पृष्ठभूमि में कार्य करने वाले विज्ञान को नहीं समझता था और न ही उस पड़ाव पर समझ सकता था। कई रस्मों में पूरा शिकार करने की सरगर्मी की नकल की जाती थी। और यह माना जाता था कि इस प्रकार से सच में ही अगली बार जब शिकार पर जाया जायेगा तो शिकार अवश्य ही पकड़ा जायेगा। इस समय इन मिथों, रस्मों आदि की महत्वपूर्ण भूमिका थी क्योंकि ये मिथें, रस्में इत्यादि प्राकृतिक घटनाक्रमों को समझने की ओर प्रथम कदम थे। किसी भी घटनाक्रम को समझने के लिए पहला कदम इस घटनाक्रम की पहचान, शिनाख्त होती है चाहे पहले पहल इस घटनाक्रम की गलत व्याख्या ही हो ;और आमतौर पर लगभग सभी महत्वपूर्ण घटनाक्रमों के संबंध में ऐसा ही होता रहा है।

वायु का देवता, बारिश का देवता, अग्नि का देवता इत्यादि चाहे इन प्राकृतिक घटनाक्रमों की गलत व्याख्या है परंतु ये मिथ मानव की नस्ल के द्वारा अपने बचपन के समय में प्राकृतिक घटनाक्रमों की शिनाख्त, पहचान को दर्शाती हैं तथा इसके कारण आज के विज्ञान के विकसित होने में एक महत्वपूर्ण कदम है यद्यपि आज अवश्य ही इन घटनाक्रमों की व्याख्या में इन मिथों से नहीं अपितु विज्ञान से ही मार्गदर्शन लेने की जरूरत है। इसके साथ ही इन मिथों, रस्मों खासतौर पर शिकार की रस्मों के द्वारा कबीले अपने नये सदस्यों को शिकार आदि की सरगर्मियों की सिखलाई भी देते थे। उस समय के समाज के उत्पादन के निम्न स्तर के कारण मानव प्रकृति के लगभग पूरी तरह से अधीन था तथा इसी अधीनगी की हालत एवं उसके साथ संघर्ष में से ही इन मिथों, रस्मों, टोनों का जन्म हुआ। इन रस्मों में प्रकृतिक घटनाक्रमों के पीछे कार्य करती हुई अदृश्य शक्तियों को रिझाने के लिए, उनके साथ अपने संबंध निकटवर्ती बनाने के लिए अन्य रस्मों के साथ पशुओं की बलि

; और बाद में मानव बलि आदि जैसी रस्में भी शामिल थीं।

ज्यों-ज्यों मनुष्य के प्रकृति के साथ संघर्ष में से उत्पादन को और अधिक विकसित किया, प्रकृतिक शक्तियों पर पहले के मुकाबले में और अधिक विकसित किया, प्रकृतिक शक्तियों पर पहले के मुकाबले में और अधिक नियंत्रण पाया, कृषि, पशु पालन आदि का विकास हुआ, वैसे-वैसे मनुष्य के विचारों में भी परिवर्तन आया और साथ ही इन मिथों, रस्मों आदि में भी परिवर्तन आना आवश्यक था क्योंकि कई प्रकृतिक शक्तियां जैसे कि जानवर इत्यादि जिन को मनुष्य कभी स्वयं से अधिक शक्तिशाली समझता था, को अब मनुष्य ने एक सीमा तक अपने अधीन कर लिया था। इसके बावजूद अधिकतर प्राकृतिक प्रक्रियाओं को मनुष्य अभी नहीं समझ सका था। तथा कृषि के विकसित होने के कारण कई प्रक्रियाएं जैसे कि बरसात आदि का महत्व और भी बढ़ गया था, इस कारण इनके पीछे कार्य करने वाली अदृश्य शक्तियों एवं उन्हें प्रसन्न करने अथवा वश में करने से जुड़ी हुई रस्मों के बचे रहने का अभी भी आधार था। इसके साथ ही कृषि पशुपालन के और अधिक विकास के साथ मानव समाज का वर्गों में बंट जाने का आधार तैयार हुआ है इन मिथों, रस्मों के बचे रहने का अभी भी आधार था। इसके साथ ही कृषि, पशुपालन के और अधिक विकास के साथ मानव समाज का वर्गों में बंट जाने का आधार तैयार हुआ और इन मिथों, रस्मों टोनों आदि के प्रयोग में गुणात्मक परिवर्तन हुआ। वर्गीय समाज में जो शोषकों की सत्ता स्थापित हुई वह धर्म पर आधारित सत्ता थी अर्थात् शोषक वर्ग अपने शासन को धर्म के आधार पर जायज ठहराता था। शोषक वर्ग अपनी सत्ता, अपने शासन को जायज बताने के लिए धर्म एवं धार्मिक विचारधारा का सहारा लेती थी। यहां पर इन मिथों, रस्मों, रीतियों का कार्य प्रमुख रूप में राजाओं, पुजारियों एवं कुल मिला कर पूरी शोषक श्रेणी का शासन जायज साबित करने का हो गया। राजा पृथ्वी पर ईश्वर अथव समस्त प्राकृतिक घटनाक्रमों की पृष्ठभूमि कार्य करने वाली शक्ति का प्रतिनिधि बन गया जिसका कार्य ही शासन करना है। दूसरे ईश्वर एवं तुम्हारे जीवन को चलाने वाली अदृश्य शक्तियों को मनाया, रिझाया केवल रसमों आदि के साथ ही जा सकता है तथा इन रसमों इत्यादि की विद्या पर पुजारी श्रेणी ने अधिकार कर लिया। इस कारण पुजारियों का साधारण जनता की मेहनत पर खाली बैठ कर पलना जायज़ हो गया।

आगे जाकर सामन्तवादी युग ;जिसमें राज्य धर्म पर आधारित पूंजीपति वर्ग के पैदा हो जाने के कारण ज्ञान-विज्ञान को बहुत बल मिला क्योंकि उत्पादन को और अधिक बढ़ाने के लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओं की सही-सही जानकारी अत्यत जरूरी बन गई। आवश्य ही प्राकृतिक घटनाक्रमों की वैज्ञानिक व्याख्या का मिथों, रस्मों, धर्म ग्रंथों में वर्णित व्याख्याओं के साथ सीधा विरोध है तथा ऐसी व्याख्याओं से केवल यह मिथों, धामिर्क ग्रंथों की वधता ही खतरे में नहीं पड़ती बल्कि इनके द्वारा जायज ठहराई गई सत्ता भी खतरे में पड़ जाती है। ब्रूनो जैसे विज्ञानी को मध्य युग में जिंदा जला देने की पृष्ठभूमि में यही कारण थे कि उसके सिद्धांत धार्मिक ग्रंथों में उल्लिखित सिद्धांत के विपरीत जाते थे तथा इन ग्रंथों पर खड़ी चर्च की पूरी सत्ता पर ही प्रश्नचिन्ह खड़े होते थे। पूंजीपति वर्ग का सामंती वर्ग के साथ भौतिक हितों में टकराव था, सामंतवादी तथा उभर रहे पूंजीवाद के मध्य में वैचारिक टकराव इन्हीं भौतिक हितों के टकराव का प्रतिबिंब था, सामंती श्रेणी पूंजीवाद के और अधिक विकसित होने में सब से बड़ा अवरोध था। पश्चिमी यूरोप, जहां पर पूंजीवाद सब से पहले विकसित होने लगा था, के अंदर पूंजीवादी विचारकों ;नया पैदा हुआ बौद्धिक वर्ग ने जन साधारण को सामंतों के विरुद्ध संघर्ष में वैचारिक तौर पर भी तैयार किया। बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा साधारण जनता में धर्मिक कट्टरता, जादू-टोना, रस्मों, मिथों आदि, संक्षेप में वे सभी चीजें जिनके द्वारा सामंती श्रेणी अपने शासन को वैध सिद्ध करती थी, के विरुद्ध डट कर प्रचार किया तथा विशाल पैमाने पर इन विचारों की पकड़ को साधारण जनता में कमजोर किया। इन लहरों को आमतौर पर नवजागरण, धर्म सुधार तथा ज्ञान प्रसार की लहरों के नाम से जाना जाता है। सामंतवाद के विरूद्ध लड़े गये संघर्षों में इन लहरों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। आज इन लहरों का योगदान ही है कि इस प्रकार की रस्में-रीतियों पश्चिमी यूरोप एवं ऐसे अन्य क्षेत्रों में से लगभग खत्म हो चुकी हैं तथा यदि कहीं पर इसके अवशेष बाकी हैं भी तो वहां के समाज में इसकी पकड़ भारत जैसे देशों की भांति बिल्कुल नहीं है।

भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों की त्रास्दी यह है कि इन क्षेत्रों में अभी जब पूंजीवाद के बीज अंकुरित होने ही शुरू हुए थे तभी इन को उपनिवेश बना लिया गया तथा इन समाजों की गति का गला घोंटकर यहां पर एक औपनिवेशक व्यवस्था को थोप दिया गया। इस व्यवस्था में जो पूंजीपति वर्ग

तथा विशेष तौर पर बुद्धिजीवी वर्ग उत्पन्न हुआ, वह लूला-लंगड़ा था। बुद्धिजीवी वर्ग का एक विशाल हिस्सा तो सामंतवाद से संबंधित वर्गों में से ही पैदा हुआ जो कभी भी सामंतवाद के विरूद्ध निर्णायक संघर्ष तथा जनता में इसकी विचारधारा, रस्मों-रिवाजों विशाल पैमाने पर प्रचार-प्रसार करने के काबिल नहीं था तथा न ही इसने ऐसा किया। इसके परिणाम स्वरूप भारत में पश्चिमी यूरोप की भांति कोई भी विशाल पैमाने की क्रांतिकारी चरित्र वाली ज्ञान प्रसार की लहर नही रही। स्वंतत्रता संग्राम में समस्त राजनैतिक दलों में से भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ;तब वह सही मायने में कम्युनिस्ट थी, ने ही सामंतवाद के खिलाफ आंदोलनकारी संघर्षों का नेतृत्व किया, जब कि कांग्रेस की लाईन तो हमेशा बच-बचा कर चलने की ही रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी कांग्रेस ने जागीरदारों से जमीन छीन कर मुजारा किसानों ;खेतीहर कृषकों में बांटने के स्थान पर मुख्य तौर पर धीमे सुधारों के द्वारा तथा जागीरदारों को पूंजीवादी कृषि अपनाने के लिए मना कर, डरा कर जागीरदारी का खात्मा किया। परिणाम स्वरूप आम जनता में बड़े स्तर पर कभी भी उन रस्मों, मिथों, धर्मिक कट्टरता इत्यादि के खिलाफ प्रचार-प्रसार नहीं किया गया जिनके द्वारा सामंती श्रेणी अपनी सत्ता को जायज ठहराती है। बल्कि इन रस्मों, मिथों, धार्मिक कट्टरता को आवश्यकता के अनुसार छंटाई करके देशी शासकों ने भी अपना लिया। आज के भारत में इन मिथों, रस्मों ;मानव बलि समेत आदि का बड़े पैमाने पर बचे रहने की जड़ औपनिवेशिक समाज एवं उसमें से पैदा हुई परिस्थिति में से तलाशी जा सकती है।

आज भारत में इन मिथों, रस्मों-रिवाजों, धार्मिक कट्टरता आदि के बचे रहने तथा 2014 के बाद तो एक हद तक फलने-फूलने के पीछे केवल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ही नहीं बल्कि वर्तमान जमीन भी है। जैसे कि आदिकालीन समाज में प्राकृतिक शक्तियों की नहीं बल्कि पूंजीवादी बाजार की शक्तियों की है। कारोबार की निश्चितता, परीक्षा में से असफल होने पर भविष्य की अनिश्चतता, रोजगार की अनिश्चतता, अपने पड़ौसी, रिश्तेदारों, दोस्तों के मुकाबले हैसियत में पिछड़ जाने का डर, इससे संबंधित अनिश्चितता कि कल को पेट भरने के लिए खाना मिलेगा अथवा नहीं आदि आदि तथा इन सभी घटनाक्रमों के पीछे कार्य करने वाले वास्तविक नियमों को न समझने के कारण मिथों, रस्मों, बलि इत्यादि जैसे काल्पनिक समाधान की ओर जाने का आधार मौजूद रहता है, खासतौर पर भारत जैसे देशों में। यहां तक कि आर्थिक संकट के गहरा हो जाने से कई विकसित देशों में भी अंधविश्वासों, रस्मों को मानने वाले लोगों में मामूली वृद्धि दर्ज की गई है ;यद्यपि इन देशों वाले अंधविश्वासों की किस्म एवं पहुंच का भारत की स्थिति के साथ दूर-दूर तक कोई मुकाबला नहीं है। आवश्यक ही पूंजीवादी बाजार में मांग के साथ पूर्ति भी जुड़ी हुई है तथा इन अंधविश्वासों के सिर पर कितने ही ढोंगी बाबा, डेरे-आश्रम इत्यादि लाखों-करोड़ों की कमाई कर रहे हैं। 2014 के पश्चात् अंधविश्वासों, रस्मों, काला-जादू आदि की घटनाओं में वृद्धि का दूसरा कारण आर.एस.एस. की विचारधारा को लागू करना है। जाहिर है कि इन अंधविश्वासों को आज भारत में खुले आम सरकारी सरपरस्ती हासिल है।

अंत में यहां पर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज इन मिथों, रस्मों तथा कुल मिला कर अंधविश्वासों के खिलाफ लड़ाई केवल इन विचारों के खिलाफ लड़ाई नहीं बल्कि पूरे उस वर्तमान ढांचे तथा इस ढांचे के रक्षक के खिलाफ लड़ाई है जो न केवल इन अंधविश्वासों का उत्साहवर्धन कर रहा है बल्कि इस को जायज ठहराने के लिए अनेक प्रकार के 'वैज्ञानिक तर्क' भी घड़ रहा है। आज के समय के जुड़वा कार्य साधारण जनता को शिक्षित करके इन अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाना तथा साथ ही उनके इस निर्दयी व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष के लिए तैयार करना है। इन दोनों में से किसी काम को अनदेखा करना लोगों की मुक्ति के प्रोजेक्ट को पथभ्रष्ट करने के समान है।

साभार -'तबदीली पसंद नौजवानों की ललकार'
हिन्दी अनुवादः बलवन्त सिंह लेक्चरार

मुक्ति का मार्ग

तुम्हारी मुक्ति का मार्ग धर्मशास्त्र व मन्दिर नहीं है बल्कि तुम्हारा उद्धार उच्च शिक्षा, व्यवसायी बनाने वाले रोजगार तथा उच्च आचरण व नैतिकता में निहित है। तीर्थयात्रा, व्रत, पूजा पाठ व कर्मकांडों में कीमती समय बर्बाद मत करो। धर्मग्रन्थों का अखण्ड पाठ करने यज्ञों में आहुति देने व मन्दिरों में माथा टेकने से तुम्हारी दासता दूर नहीं होगी। तुम्हारे गलें में पड़ी तुलसी की माला गरीबी से मुक्ति नहीं दिलायेगी।

डा. भीमराव अम्बेड़कर

गीतेश

बकलमे खुद

लेखक के बारे में : बिहार के एक ग्राम में 1932 में जन्मे लेखक गीतेश को पिता की इच्छानुसार आठवीं कक्षा में पढ़ाई अधूरी छोड़कर पुश्तैनी धंधा-पुरोहिताई-अपनाना पड़ा। बेमन दो वर्षों तक पुरोहिताई की परन्तु अन्ततः धर्म, भगवान व परिवार से विद्रोह कर 1952 में कोलकाता चले आये।

वर्षों फ़ाकामस्ती, यायावरी की ज़िन्दगी जी।

हिन्दी समाचार-पत्र दैनिक 'विश्वमित्र' से पत्रकारिता की शुरूआत की। तत्पश्चात स्तम्भकार, सम्पादक, प्रधान सम्पादक आदि पदों पर रह कर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे। सम्प्रति जन-संसार के प्रधान सम्पादक रहे।

विभिन्न संगठनों के आमंत्रण पर भारत व भारतीय संस्कृति से सम्बंधित विभिन्न विषयों पर व्याख्यान देने व अध्ययन हेतु इंगलैण्ड, अमरीका, कनाडा, त्तकालीन, सोवियत संघ, बुल्गारिया, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, उत्तर कोरिया, थाईलैण्ड, वियतनाम, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल आदि देशों में एकाधिक बार व्यापक भ्रमण किया।

मानवतावादी, नास्तिक चिंतन के प्रबल पक्षधर होने के नाते भारत के विभिन्न सम्प्रदायों तथा विभिन्न राष्ट्रीयताओं के जन-गन के बीच पारसपरिक सम्बन्ध विकसित करने की दिशा में चार दशकों से राष्ट्रीय, अन्तराष्ट्रीय स्तर पर शांति व मैत्री आन्दोलनों की प्रक्रियाओं से जुड़े रहे हैं।

समसामयिक ज्वलंत विषयों पर कई पुस्तकें लिखी जिनमें प्रमुख हैं- विद्रोही कवि नज़रुल, विकृत समाज, साम्प्रदायिकता एवं साम्प्रदायिक दंगे, पंजाब: सुलगता सवाल, धर्म के नाम पर, Man, God And Religion, Perverted Society, Double Fantasy, India-Vietnam Relations: First to Twenty First Century आदि।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के सारस्वत सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग के राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, बुल्गारिया सरकार के सिल्वर जुबिली मेडल, उत्तरापथ (स्वीडन) के सेलमा लेगरलोफ गोल्ड मेडल तथा वियतनाम सरकार के सर्वोच्च नागरिक सम्मान से सम्मानित किए जा चुके हैं। ***-संपादक***

मैं एक अत्यंत रूढ़िवादी धार्मिक परिवार में पैदा हुआ। चूँकि मैं पैदा 1932 में जन्माष्टमी की रात ठीक बारह बजे हुआ था। इसलिए मेरा नाम दादी ने कन्हैया रखा। बाद में मैंने उसे बदलकर गीतेश रखा।

दो-अढ़ाई साल की उम्र में मेरी माँ अपने भाई, मेरे मामा से मिलने गईं। उनके 16 वर्षीय एकमात्र पुत्र की मृत्यु हो गई थी। मामा ने माँ को कहा-इसे यहाँ रख जाओ, मेरा पोष्यपुत्र होगा। मामा अमीर थे, माँ बहुत गरीब। फिर मामा का जबर्दस्त रोब था पूरे परिवार पर। माँ 'ना' नहीं कर पाईं। अढ़ाई वर्ष की उम्र में मैं मामा के संरक्षण में आया। 3 साल मैं बहुत लाड-प्यार में पला। इसी बीच मामा की इकलौती पुत्री के बेटा हो गया तो मामा का सारा लाड़-प्यार अपने नाती पर केन्द्रित हो गया। मैं उपेक्षित हो गया।

मामा पेशागत पुरोहिताई करते थे तथा वैद्य थे। दोनों धंधे ठीक-ठाक चलते थे। उनकी इच्छा हुई कि मैं वंश परम्परा का निर्वाह करूँ। लिहाजा पढ़ाई छुड़वा कर पुरोहिताई पर लगा दिया।

पारिवारिक मंदिर में सुबह-शाम पूजा-आरती करना, दीपावली में जजमानों के नये खाते के अवसर पर गणेश-लक्ष्णी की पूजा करना, घरों में सत्यनारायण की कथा बाँचना, जजमान के परिवार में कोई मृत्यु हो जाने पर गरुड़-पुराण बाँचना आदि मेरे कार्य थे। हालाँकि यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता था, पर मामा के सामने कुछ बोलने की हिम्मत नहीं थी। हाँ, मैं धर्मभीरु था। ईश्वर, देवी-देवताओं में मेरा अटल विश्वास था। नियमित रूप से दुर्गा सप्तशती, हनुमान चालीसा का पाठ करता था। पर सत्यनारायण की कथा बाँचते-बाँचते, गरुड़-पुराण पढ़ते-पढ़ते एक विरक्ति का भाव-सा जागृत होने लगा।

गरुड़ पुराण का लक्ष्य विशुद्ध रूप से जजमानों में भय पैदा कर ज्यादा से ज्यादा भौतिक लाभ अर्जित करना मात्र है। चाँदी-सोना, कपड़े-लत्ते से लेकर सुस्वादु भोजन व दक्षिणा

दो तो मृतक सीधे स्वर्ग जायेगा, वरना उसकी आत्मा योनि-योनि भटकती रहेगी और अंततः नरक में जा गिरेगी।

हमारे गाँव में बिजली नहीं थी, नाम के लिए सड़क थी, पर एक पुस्तकाल्य था-अग्रवाल युवक पुस्तकालय। फुर्सत के वक्त वहाँ जाकर पुस्तकें पढ़ता, सदस्य की हैसियत से घर लाकर भी पढ़ता। पढ़ने का नशा-सा हो गया था। भगत सिंह का लंबा लेख 'मैं नास्तिक क्यों हूँ?' राहुल सांकृत्यायन की 'भागो नहीं दुनिया बदलो', 'तुम्हारे धर्म की क्षय'। यशपाल की पुस्तक 'गाँधीवाद की शव-परीक्षा', 'चक्कर कल्ब' आदि पढ़ ही नहीं गया, पी गया। इसके साथ कम्युनिस्टों की संगत में आ गया।

यहाँ यह बता दूँ कि उस वक्त के कम्युनिस्ट और आज के अधिकांश कम्युनिस्ट में जमीन-आसमान का फर्क है। सच तो यह है कि आज के अधिकांश कम्युनिस्ट केवल लफ्फाजी में कम्युनिस्ट हैं, जीवन शैली में पक्के सामंती बुर्जुआ।

उस वक्त के कम्युनिस्टों में क्रांति का जज्बा था, उनकी जुझारू जीवन शैली की वजह से समाज में अलग पहचान थी। जनता के हित के लिए लड़ने-मरने को तैयार, दलितों-मुसलमानों के घर खान-पान में उन्हें रत्तीभर भी परहेज़ नहीं था। इसके लिए वे समाज-परिवार से बहिष्कृत से थे, पर आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

मार्क्सवादी साहित्य पढ़ना। नियमित रूप से पढ़ने-लिखने को लेकर, समाज, देश की परिस्थितियों को लेकर बहस-मुबाहसा होता। मैं भी उनमें शामिल हो गया।

अजीब द्वन्द्व की स्थिति थी।

पूजा-पाठ भी चलता रहा। मामा परेशान की किस कपूत को पोष्य-पुत्र का दर्जा दे दिया। रोज डाँट-डपट, कभी-कभी थप्पड़ों से स्वागत। मेरी जन्मदात्री माँ और अपनी बहन का नाम लेकर कहते, उसके पैदा किए सपूत कहाँ से होंगे।

मेरी ममेरी बहन के एक के बाद एक कई सन्तानें हुईं। बेटे-बेटियाँ। मामा का सारा लाड़-दुलार उनके लिए, मेरे लिए अवहेलना, डाँट-फटकार। माँ बेचारी सीधी-साधी अँगूठा छाप। आये दिन गाली-गलौज, पिटाई के बावजूद पति में परमेश्वर का रूप देखती और नरक में जाने के भय से जी-जान से उनकी सेवा करती। पर मुझसे भी लाड़-प्यार करती। हाँ, सबसे ज्यादा मेरी बुआ मुझे चाहती थी। रूठने पर माँ मनाते-मनाते थक जाती तो हार मान लेती। पर बुआ, क्या मजाल जो मनाये बगैर और मुझे खिलाए बगैर मुँह में एक दाना भी डालें। मेरी जिद्द उसके सामने हार मान जाती।

इस बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने मेरी आँखें खोल दीं और अंततः भाग्य-भगवान से मुझे पूरी तरह मुक्त करा दिया।

मेरा एक अभिन्न मित्र था, जिसकी गंजी की दुकान थी। एक दिन हम बैठे गप्पें लगा रहे थे कि एक ग्राहक आया और उसने बारह आने में गंजी खरीदी। वह चला गया तो मित्र ने देखा कि अठन्नी नहीं मिल रही। उसने मुझसे पूछा-तुमने ली है क्या? मैं अवाक् कि यह क्या कह रहा है। उसने बाकायदा मेरी तलाशी ली। मैं अपमान की अग्नि में झुलसता घर आया। उस रात खाना भी नहीं खाया गया।

मैंने तय किया कि रातभर पाठ करूँगा तथा दूसरे दिन दुकान खुलते ही उसके पास जाऊँगा। भगवान जरूर मेरा उद्धार करेंगे तथा उसकी अठन्नी दुकान में कहीं गिरी मिल जाएगी। रातभर भगवान की शरण में रहा। पूरे मन से, पूरे (अंध) विश्वास के साथ।

दूसरे दिन दुकान खुलते ही पहुँचा। मित्र को पूरे विश्वास के साथ कहा, ठीक से देख लो अठन्नी यहीं कहीं है। मित्र ने वही किया। एक-एक कोना देखा। अठन्नी को न मिलना था, ना मिली। मैं हतप्रभ। यह क्या? भगवान अपने भक्त की लाज नहीं बचा सके।

वह पहला और आखिरी दिन था मैंने भाग्य, भगवान और परिवार को तिलांजलि दी और सम्पत्ति का मोह त्याग मात्र पाँच सौ रुपये लेकर 1950 में कलकत्ता चला आया। तबसे यह मेरी कर्मस्थली रही है।

मैं बचपन से सपने देखता था। धर में, बाहर अवहेलना मिलती रही। मामा कहते-कुलंगार है, भीख माँगेगा। गाँव में ब्राह्मण की इज्जत तो होती पर उसे माँगने-खाने वाला कहा जाता था। मैं जब किसी से सपने की बात करता तो वह मजाक उड़ाता हुँह, लेखक बनेगा, देश-विदेश की सैर करेगा? शेखचिल्ली के सपने देखना बंद करो, वरना पछताओगे। पर मैं सपने देखता रहा। लेखक बना, देश-विदेश की भी सैर की और राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय गोष्ठियों में शिरक्त भी की।

हाँ-एक सपना अधूरा रह गया। सड़ी-गली व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के लिए क्रांतिकारी बनना चाहता था, वह अपनी कमजोरियों से न कर पाया, न कर पाऊँगा, जबकि मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि इस जनविरोधी सड़ी-गली व्यवस्था

को एक सुविचारित आदर्श-सिद्धांत के तहत क्रांति के बिना बदलना कतई संभव नहीं।

अपनी न्यूनतम सुविधा को बनाए रखने के लिए मुझे यदा-कदा समझौते भी करने पड़े। मैंने एन मुद्दों पर अपने आपको जरा भी डिगने नहीं दिया। अस्तित्व बनाए रखने के लिए विश्व मित्र में चालीस रुपये माहवार पर काम करने से लेकर न जाने कितने पापड़ बेलने पड़े।

जहाँ तक लेखन का प्रश्न है, मैं लिखने के लिए नहीं लिखता। कभी नहीं लिखा। आज तक जो कुछ भी लिखा, हिन्दी का परम्परावादी लीक से हटकर। मुझे प्रेरणा मिली, भगत सिंह, राहुल, यशपाल, बाबा नागार्जुन से और अपने अनुभवों से। जीवन में अब तक हिंदी, अंग्रेजी में लिखी दर्जनों नहीं, सैंकड़ों पुस्तकें पढ़ीं। वेद, पुराण, गीता, बाइबिल, कुरान भी पढ़ा हैं। बौद्ध व चार्वाक के भौतिकवादी, अनीश्वरवादी दर्शन पर जो कुछ सामग्री उपलब्ध हुई, पढ़ी।

18 वर्ष की उम्र से शुरू यायावरी का सिलसिला अभी तक जारी है। उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम भारत की यात्रा के अलावा एशिया, यूरोप, अमेरिका महाद्वीप के लगभग 30 देशों की यात्रा की। ज्यादातर एक मुफलिस मवाली की तरह तथा कभी-कभी आमंत्रित वीआईपी की हैसियत से। यात्राएँ पर्यटन-स्थलों की सैर के लिए नहीं, बल्कि जनगण से रिश्ता बनाने की दृष्टि से, उनसे आंतरिक रिश्ता बनाने के लिए की। कितना कुछ सीखा, उसका लेखा-जोखा देना संभव नहीं, पर यह जरूर है कि मैंने चीज़ों को बहुत से, गहरे पैठकर देखा। मैंने पाया कि सही संवाद हो, आंतरिकता हो तो काले-गोरे सभी भावनात्मक स्तर पर एक हैं। स्नेह, प्यार के भूखे हैं।

मेरे बृहत्तर परिवार के सदस्यों में विभिन्न राष्ट्रीयताओं, धर्मों, मानवतावादियों, जातियों के लोग शामिल हैं। हाँ, लेखन का जिक्र आया है तो कह दूँ कि मैंने बिना कोई समझौता किए पूरी निष्ठा व प्रतिबद्धता से लेखन किया। तभी तो 'धर्म के नाम पर' जैसी पुस्तक लिख पाया। मैं आभारी हूँ राजकमल प्रकाशन का जिसकी वजह से यह पुस्तक देश भर में हजारों पाठकों तक पहुँच पाई। अगसत 2013 में इसका पाँचवां संस्करण छपा है। पाठकों ने इसे हाथों हाथ लिया जबकि हिंदी के स्वनामधन्य समीक्षकों ने इसकी उपेक्षा की। इनमें कमलेश्वर, भीष्म, साहनी, शिवमंगल सिंह सुमन अपवाद हैं।

इसके अलावा जो पुस्तकें लिखीं, उनमें साम्प्रदायिकता एवं साम्प्रदायिक दंगे, पंजाब सुलगता सवाल, विद्रोही कवि नजरुल इस्लाम, विकृत (अमेरिकी) समाज, धर्मनिरपेक्षता के मायने, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता व धर्म आदि उल्लेखनीय हैं।

धर्म को लेकर मेरी यह धारणा रही हैकि मानव जाति के हित के लिए धर्म को हाशिये पर डालना होगा। ईश्वर-धर्म यथास्थिति के प्रबल पक्षधर हैं। जाहिर है, मनुष्य जिस विकास यात्रा से गुजरते हुए आज जहाँ पहुँचा है, वह सम्भव ही नहीं होता यदि उपर्युक्त धारणा को चुनौती देते हुए स्वतंत्र दृष्टि से नई धारणा, नए विचार, नया दर्शन, नए आदर्श व सिद्धान्त न गढ़े हुए होते। बुद्ध से लेकर मार्क्स तक और उसके बाद भी चुनौतियों का सिलसिला जारी है तथा कई कमियों-खामियों के बावजूद प्रगति और विकास की जिस मंज़िल तक मनुष्य पहुँचा है, उसका श्रेय उन चिन्तकों, वैज्ञानिकों, नवजागरण के पुरोधाओं को है, जो यथास्थितियों तथा ईश्वर व धर्म की अवधारणा को चुनौती देते रहे हैं। धर्म की कसौटी के अनुसार इन सारे लोगों ने 'ब्लासफेमी' (ईश-निन्दा) की है और ये दंड के अधिकारी हैं।

बुद्ध ने कहा - ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है। साथ ही यह भी कहा कि किसी की कही या लिखी बात पर तब तक विश्वास न करो, जब तक उसे अपने विवेक की कसौटी पर खरा न पाओ। उन्होंने कहा-अप्प दीपो भव-यानी अपने मार्गदर्शक स्वयं बनो।

चार्वाक ने कहा-भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुतः-यानी भस्मीभूत इस देह का कोई पुनर्जन्म नहीं।

और तो और, वैदिक काल से ही भारत में अनीश्वरवादी नास्तिक धारा भी प्रवाहित होती रही है, जिसके अंतर्गत धर्म व ईश्वर की अवधारणा को नकारते हुए उसकी कटुतर आलोचना भी की जाती रही है। साथ-ही-साथ अगले-पिछले जन्म व स्वर्ग-नरक की अवधारणा को नकारा जाता रहा है।

खगोलशास्त्री गैलिलियों का मानना था कि सूर्य स्थिर है, धरती उसकी परिक्रमा करती है जबकि उससे पूर्व धार्मिक मान्यता इसके विपरीत थी। एक धर्म की मान्यता के अनुसार तो शायर और शायरी तक को भी बुरा बताया गया है। इस तरह के अनेक प्रसंग हैं।

आज जो वैज्ञानिक उपलब्धियाँ मनुष्य को हासिल हुई है - शिक्षा, चिकित्सा, सुख-सुविधा आदि के क्षेत्र में, वे क्या हासिल हुई होतीं यदि मनुष्य केवल धर्म में लिप्त जीवन-यापन करता? साहित्य की विभिन्न विधाओं-कहानी, उपन्यास, कविता का विकास संभव हुआ होता। खोजी पत्रकारिता कहाँ होती ?

सच तो यह है कि हर विकास और आविष्कार के पीछे मानव-मन की शंकाएँ और प्रश्न ही तो हैं तथा उनका जो कुछ भी उत्तर खोजा जा सका है, क्या वह धार्मिक अवधारणाओं पर आघात किए बिना संभव होता? समता व न्याय पर आधारित सामाज की संरचना के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी तभी संभव हुआ, जब भाग्य व भगवान पर निर्भर अलौकिक, चमत्कारिक, पुरोहितवाद, राजतंत्र, सामन्तवाद आदि को नकारा गया।

ईश्वरवादी चाहे जितना भी दावा करें कि सृष्टि की हर समस्या का विज्ञान-सम्मत समाधान उनकी धार्मिक पुस्तकों में मौजूद हैं, परन्तु सैंकड़ों हजारों वर्षों के शोध से वैज्ञानिक व चिंतकों ने जो तथ्य प्रस्तुत किए हैं, उनसे यह दावा कहीं मेल नहीं खाता। डार्विन की खोज यह कहती है कि मानव जाति को पूर्ण रूप से शारीरिक व मानसिक रूप से विकसित होने में लाखों वर्ष लगें और यह प्रक्रिया अभी भी जारी है जबकि धर्म पुस्तकों के अनुसार, ईश्वर ने बस चाहा और क्षणमात्र में सृष्टि का सृजन हो गया।

एक धार्मिक पुस्तक के अनुसार ईश्वर सातवें आसमान पर रहता है और वहीं से सृष्टि का संचालन करता है। वहीं एक अन्य धार्मिक पुस्तक कहती है कि ईश्वर कण-कण में व्यापत है जबकि मजे की बात यह है कि सभी धर्मों के लोग अपने-अपने धार्मिक स्थलों को भगवान का घर बताते हैं और उसकी पवित्रता पर कोई प्रश्न उठाए या आँच लाए तो गला काटने को तत्पर हो उठते हैं।

अविवेकपूर्ण-अवैज्ञानिक चम्तकारों से सारे धार्मिक ग्रंथ अटे पड़े हैं। ऐसी एक नहीं सैंकड़ों-हजारों चमत्कारिक घटनाएँ धार्मिक ग्रन्थों में भरी पड़ीं हैं। और मजे की बात यह है कि इक्कीसवीं सदी में आधुनिक कहलाने वाले ईश्वरवादी न केवल उन घटनाओं पर विश्वास करते हैं बल्कि उन घटनाओं की याद में हर साल उत्सव मनाए जाते हैं जिन पर अरबों-करोड़ों रुपये फूँक दिए जाते हैं। यही रक्म अगर जरूरतमंद पीड़ित लोगों पर खर्च हो तो समाज का भला हो।

धर्म मनुष्य के स्वतंत्र चिन्तन पर प्रतिबन्ध लगाता है, उस पर आघात करता है, उसके दिल-दिमाग के दरवाजे व खिड़कियों को बंद रखता है ताकि बाहर की ताजी हवा उसमें प्रवेश न कर सकें। धर्म से धार्मिक कट्टरवाद उपजता है, जो अपने अनुयायी को बर्बरता की हद तक ले जाता है।

व्यक्ति क्या सोचे, क्या लिखे, क्या खाए, क्या पहने आदि व्यक्ति स्वयं तय करें या धर्म-यह मनुष्य जाति के बुनियादी प्रश्न है। इस प्रश्न का जब तक मनुष्य के पक्ष में उत्तर नहीं आएगा, दुनिया में खूनी टकराव बना रहेगा।

कभी पश्चिम में धर्म की जड़ें बहुत गहरी थीं। पर नवजागरण (रनेंसाँ)) से जुड़े बुद्धिजीवियों ने सबसे पहले उस पर आघात किया और विवेकपरक वैज्ञानिक सोच तथा समतामूलक समाज का विकल्प दिया। आज पश्चिम का धर्मनिरपेक्ष, सभ्य समाज उसी का प्रतिफल है। कल्याणकारी समाज व्यवस्थया ने भाग्य-भगवान पर आश्रित मनुष्य को लगभग मुक्त स्वतंत्र चिन्तन दिया है।

विगत 500 वर्षों में पश्चिम में हुए वैज्ञानिक आविष्कारों का ही नतीजा है कि यक्ष्मा, चेचक, पोलियो, प्लेग आदि जैसे असाध्य रोगों से सफलतापूर्वक निपटने की चिकित्सा पद्धति उपल्बध हुई है।

बिजली, टेलीफोन, रेल, हवाई जहाज आदि न जाने कितने आविष्कार पश्चिम के वैज्ञानिकों के अथक प्रयासों का परिणाम है।

दुनिया में पचास के करीब धार्मिक देश हैं। परन्तु क्या किसी ने भी कोई मानव कल्याणकारी वैज्ञानिक आविषकार किया?

फिर क्यों ना धर्म व ईश्वर को हाशिये पर रखकर हम भी ऐसे समाज की स्थापना के प्रयास में जुट जाएँ जिसमें प्रत्येक मनुष्य को मर्यादित जीवन जीने का न्यूनतम हक हो।

इसके लिए आवश्यक है कि तर्क, विवेक, वैज्ञानिक चेतना तथा समतामूलक समाज की स्थापना को प्राथमिकता देना।

धर्म का आधार है आस्था या यूँ कहें अन्ध-आस्था। वहाँ तर्क, विवेक की कोई गुंजाइश नहीं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को ईश-निन्दा माना जाता है और ईश-निन्दा का दंड है-सज़ा-ए-मौत। जाहिर है, धर्म को हाशिये पर रखे बिना विवेकपरक चिन्तन की कोई गुंजाइश नहीं।

विश्व-मानवता के लिए एक और खतरा साम्राज्यवाद रहा है, परन्तु धर्म की सत्ता को बरकरार रखते हुए साम्राज्यवाद से निर्णायक युद्ध क्या संभव है? देखा तो यह जा रहा है कि साम्राज्यवादी ताकतें धर्म का एक हथियार के रूप में प्रयोग कर रही हैं, न केवल एक धर्मावलम्बी को दूसरे धर्मावलम्बी के विरुद्ध लड़ाकर बल्कि एक ही धर्म के विभिन्न समुदायों, उपसमुदायों का आपस में टकराव कराकर और इस प्रकार अपना हित साधन करती रही हैं।

जाहिर है, साम्राज्यवाद का मुकाबला धर्म नहीं, जनतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समता–न्याय के पक्षधर ही कर सकते हैं।

अंत में, भगत सिंह के विचारों से पूर्ण सहमति व्यक्त करते हुए उनका उद्धरण दे रहा हूँ – ''प्रत्येक मनुष्य को, जो विकास के लिए खड़ा है, रूढ़िगत विश्वासों के हर पहलू की आलोचना तथा उन पर अविश्वास करना होगा और उसको चुनौती देनी होगी। प्रत्येक प्रचलित मत की हर बात को हर कोने से तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि काफी तर्क के बाद भी वह किसी सिद्धान्त अथवा दर्शन के प्रति प्रेरित होता है, तो उसके विश्वास का स्वागत है। उसका तर्क असत्य, भ्रमित या छलावा और कभी–कभी मिथ्या हो सकता है। लेकिन उसको सुधारा जा सकता है क्योंकि विवेक उसके जीवन का दिशासूचक है पर निरा विश्वास और अंधविश्वास खतरनाक हैं। ये मस्तिष्क को मूढ़ तथा मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देते हैं।''

''धार्मिक अंधविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। जो चीज आजाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती, उसे समाप्त हो जाना चाहिए।''

मेरी यह दृढ़ मान्यता मेरे 65–70 वर्षों के विशाल अनुभवों पर आधारित है कि क्रांति की राह में, न्यायसंगत समतामूलक समाज के गठन में, धर्म–ईश्वर सबसे बड़े अवरोधक तत्त्व हैं। इनको तिलांजति दिए बिना न क्रांति संभव है, न समतामूलक समाज का गठन। 82 वर्ष की उम्र में लगता है, मैं आधे रास्ते पर आकर ठहर गया हूँ। मुझमें अपराधबोध है कि मैं क्रांतिकारी क्यों नहीं बन पाया। आशावादी हूँ इसलिए मानता हूँ कि आने वाली पीढ़ी अधूरे काम को पूरा करेगी। क्रांति का कोई विक्लप नहीं, वह हिंसक भी हो सकती है, अहिंसक भी।

और अंत में।

मैंने जीवन में कभी किसी प्रकार के धार्मिक रीति–रिवाज, कर्मकाण्ड का पालन नहीं किया। वसीयत कर दी है कि मनणोपरांत मेरा शव किसी अस्पताल में दे दिया जाए, जो अंग उपयोगी हों, जरूरतमंद के शरीर में लगा दें, बाकी का हिस्सा परीक्षण के लिए ताकि मानव जाति के कुछ काम आये।

(स्रोत : पुस्तक 'भारत के प्रख्यात नास्तिक' संपादक : डा. रणजीत)

पृष्ठ 14 का शेष

जो बहुत ही शांत भाव, साफ सोच और बुद्धिमानी के साथ इस फौज का संचालन करते हैं और इनका खर्च उठाते हैं। फासीवाद के शोर–शराबे और काल्पनिक विचारधारा को लेकर जो भारी भरकम बातें कही जा रही हैं उनका महत्व पहली बात, यानी घनघोर संकट की स्थितियों में कमजोर होते पूंजीवाद को टिकाए रहने की असली कार्यप्रणाली के सन्दर्भ में हैं।''

नेक नीयत, भले मानुस, मध्यम वर्गीय उदारवादियों को भी एक बात समझने का वक्त आ गया है कि उनकी संभ्रांतता अब ख़तरे में है। फ़ासीवाद बहुत हिंसक और ज़ालिम व्यवस्था है। बेहतर होगा देश का तटस्थ समुदाय और और संभ्रांत उदारवादी विद्वान समूह अंग्रेजी फिल्म 'शिंडलरस लिस्ट (Schindler's List) देखे जिससे इस हिंसक शासन व्यवस्था, फासीवाद के बारे में किसी को कोई मुगालता ना रहे। इस व्यवस्था में यदि आप खूनी फासिसटों के खूनी खेल का अंग नहीं है तो आप उनके दुश्मन हैं और आपको खत्म किया जाना चाहिए। प्रख्यात पादरी मार्टिन निमोलर ने वो कालजयी कविता यूँ ही नहीं लिखी थी। फासिस्ट वाकई एक एक कर सबके लिए आते हैं और तटस्थ रह तमाशा देखने वालों का जब नम्बर लगता है तब उन्हें बचाने वाला कोई नहीं होता। फासीवाद को शासक पूंजीवादी वर्ग अपनी खुशी के लिए नहीं लाता। पूंजीवादी–साम्राज्यवादी व्यवस्था को मरणासन्न संकट से बचाने का यो आखरी उपाय है। सतत सड़ती जा रही इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था का मुक्तिदाता सर्वहारा वर्ग है। इंसानियत, न्याय और श्रम का सम्मान करने वाला युग, समाजवाद के नेतृत्व में ही आएगा। मौजूदा व्यवस्था में जनवादी स्पेस को बचाने के लिए भी संघर्ष करना आवश्यक है।

मज़दूर वर्ग को फासीवाद के विरुद्ध इस लड़ाई को जीतना ही होगा। प्रिय नेता क्लारा जेटकिन के शब्दों में फासीवाद, मज़दूरों द्वारा इस सड़ती व्यवस्था को दफ़न ना कर पाने की ही सज़ा है। शानदार किसान आन्दोलन की सबसे अहम सीख है कि उसने एक सच्चाई निर्विवाद प्रस्थापित कर दी कि असली ताकत संसद या प्रधानमंत्री कार्यालय में नहीं बल्कि सड़कों में हैं। 99996 87307

धार्मिकों का ईश्वर बस उनकी अज्ञानता को ढकने या हमारी अज्ञानता को बनाये रखने का उपाप है।

– पाल हेनरी हालबाक

दुनिया में बढ़ रहे 'डिमेंशिया' के मरीज

मतिभ्रम डिमेंशिया के बारें में दुनिया में ज्यादा समझ नहीं बनी है। एक शोध रिपोर्ट में वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि अगले तीन दशक में मतिभ्रम यानी डिमेंशिया के मामलों में तीन गुना बढ़ सकते हैं। इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति गंभीरता से सोचने, याद रखने और तर्क करने की क्षमता खो देते हैं, जिसकी वजह से दैनिक जीवन का चलना मुश्किल हो जाता है। वे अपनी भावनाओं की नियंत्रित करने, संवाद और दैनिक कामों के लिए संघर्ष करते हैं। यह दुर्बल करने वाली बीमारी है और इसके बारे में समझ बहुत ज्यादा नहींहै।

> विज्ञान पत्रिका 'द लैसेट जर्नल' में छपे शोध रिपोर्ट के मुताबिक, अगले तीन दशक में डिमेंशिया से पीड़ित लोगों की सख्या तीन गुनी हो जाएगी। वर्ष 2050 तक डिमेंशिया से पीड़ित लोगों की संख्या 5.7 करोड़ से बढ़कर 15.2 करोड़ से अधिक हो जाएगी। हालांकि वैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्ति के व्यवहार में बदलाव कर उसमें डिमेंशिया के विकास की संभावनाओं को प्रभावित किया जा सकता है। अगले 30 साल में तीन गुना बढ़ेंगे डिमेंशिया के मरीज।

विज्ञान पत्रिका 'द लैसेट जर्नल' में छपे शोध रिपोर्ट

के मुताबिक, अगले तीन दशक में डिमेंशिया से पीड़ित लोगों की संख्या तीन गुनी हो जाएगी। वर्ष 2050 तक डिमेशिया से पीड़ित लोगों की संख्या 5.7 करोड़ बढ़कर 15.2 करोड़ से अधिक हो जाएगी। हालांकि, वैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्ति के व्यवहार में वदलाव कर उसमें डिमेंशिया के विकास की संभावनाओं को प्रभावित किया जा सकता है।

वैज्ञानिक डिमेंशिया कोई खास बीमारी नहीं मानते। जर्मन रिसर्च सेंटर फार न्यूरोडीजेनेरटिव डिजीज़ के वैज्ञाीनिकों ने यह शोध किया है। इस केंद्र में की डिमेशिया विशेषज्ञ मरीना वोकाडी के मुताबिक, इनमें से कुछ को बदला जा सकता है और अपने जीवन जीने के तरीके में बदलाव के जरिए कई कारकों को रोका जा सकता है। वे कहती है, यदि हम प्रतिवर्ती स्थितियों को ठीक करने का मौका चूक जाते हैं तो वे डिमेंशिया का कारण बन सकते हैं।

अभी तक यह पता नहीं चला पाया कि डिमेंशिया की वजह बनने वाले तांत्रिक तंत्रीय (न्यूरोलाजिकल) क्षति का कारण क्या है। वैज्ञानिकों ने कई कारकों की पहचान की है, जिनसे डिमेंशिया होने की आशंका होती है। डिमेशिया रोकथाम पर लैसेट आयोग ने 12 मुख्य जोखिमों को सूचीबद्ध किया है– शिक्षा का निम्न स्तर, उच्च रक्तचाप, सुनने की क्षमता में कमी, ध्रूमपान, मोटापा, अवसाद, शारीरिक गतिविधि की कमी, मधुमेह और कम सामाजिक संपर्क। इसके अलावा अत्यधिक शराब का सेवन, मस्तिष्क की गहरी चोटें और वायु प्रदूषण। हाल के शोध ने यौन हमले और डिमेंशिया के बीच एक कड़ी को भी उजागर किया है।

वोकाडी कहती है कि इन जोखिमों में से अधिकांश को व्यवहार में बदलाव के माध्यम से कम किया जा सकता है। यदि हम व्यक्तिगत रूप से या हमारी सरकारें इन जोखिम कारकों को कम करने के लिए कुछ ठोस काम करती हैं, तो हम डिमेंशिया के कम से कम 40 फीसद मामलों को रोक सकते हैं। 75 से अधिक उम्र के 469 लोगों पर शोध किया गया।

नियमित व्यायाम और स्वस्थ आहार जैसे, चीनी और वसा में कमी, ध्रम्रपान और अधिक शराब पीना रोक कर मधुमेह, उच्च रक्तचाप और अवसाद से जुड़े जोखिमों को कम किया जा सकता है। अच्छी नींद लेना भी इससे बचाव में मदद करता है। साल 2021 में जारी एक शोध के मुताबिक, 50 और 60 की उम्र के लोग जो पर्याप्त नींद नहीं लेते हैं, उनके जीवन में एक समय के बाद डिमेशिया होने की संभावना अधिक होती है। वैज्ञानिकों के मुताबिक, जब तक मरीज़ अपने दैनिक जीवन पर बीमारी के प्रभाव को नोटिस करना

शेष पृष्ठ 27 पर

भीख मांगना - कितनी बड़ी समस्या

सलिल सरोज

गरीबी और बेरोजगारी की समस्याओं के साथ भीख की समस्या है जो विकासशील देशों में महान परिमाण और गंभीर चिंता की सामाजिक समस्या है। भीख माँगना समाज के लिए एक समस्या है, क्योंकि बड़ी संख्या में भिखारियों का मतलब है उपलब्ध मानव संसाधनों का गैर उपयोग और समाज के मौजूदा संसाधनों पर अत्यधिक तनाव।दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क के एक हालिया सर्वेक्षण के अनुसार भारत में भिखारियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। 1991 के बाद से एक दशक में उनकी संख्या एक लाख हो गई है। दिल्ली में कुछ 60,000 भिखारी हैं, 2004 की एक्शन एड रिपोर्ट के अनुसार मुंबई में 3, 00,000 से अधिक लगभग 75000 कोलकाता में भिखारी हैंय पुलिस रिकॉर्ड के अनुसार बैंगलोर में 56000। 2005 में मानव कल्याण परिषद के अनुसार, हैदराबाद में प्रत्येक 354 लोगों में से एक भीख मांगने में लगा हुआ है।

भिखारियों को आकस्मिक गरीबों से अलग करने वाली रेखा उस देश में स्लिमर हो रही है, जहां हर चार में से एक हर रात भूखा सोता है और 78 मिलियन बेघर हैं। दिल्ली के 71 प्रतिशत से अधिक भिखारी गरीबी से प्रेरित हैं। 66 प्रतिशत से अधिक भिखारी सक्षम हैं। सर्वेक्षण से पता चलता है कि आजीविका के रूप में भीख मांगना आकस्मिक श्रम पर जीत हासिल करता है। 96 प्रतिशत के लिए औसत दैनिक आय 80 रुपये से अधिक है जो दैनिक वेतन कमाने वाले कमा सकते हैं। खर्च करने वाले पैटर्न भी एक अद्वितीय पैटर्न का खुलासा करते हैं: 27 प्रतिशत भिखारी प्रतिदिन 50-100 रुपये खर्च करते हैं। देश में भिखारियों की कोई उचित गणना नहीं है। इसके अलावा महिलाओं और बच्चों की संख्या लगातार बढ़ रही है। 1931 की जनगणना में सिर्फ 16: महिला भिखारियों का उल्लेख है। 2001 में यह आंकड़ा 49 प्रतिशत तक था। 10 मिलियन सड़क पर बच्चे हैं, जो आजीविका के लिए भीख माँगते हैं।

सबसे बड़ी समस्या भिखारियों के प्रति बदलते रवैये की है। पारंपरिक रूप से भीख मांगना भारत में जीवन का एक स्वीकृत तरीका रहा है। जरूरतमंदों को भिक्षा देते हुए सामाजिक ताने-बाने में बांधा गया। औपनिवेशिक शासन के साथ यह बदल गया। विक्टोरियन भिखारी के लिए आलस्य और नैतिक पतन का प्रतीक था। औपनिवेशिक कानूनों ने उसकी हालत के लिए एक भिखारी को दंडित किया। नव स्वतंत्र राष्ट्र ने गरीबी के प्रति इस रवैये को अपनाया। नई सहस्राब्दी में सरकार नहीं चाहती है कि मध्यम वर्ग के आसपास झूठ बोलने वाले उन्हें एक उपद्रव के रूप में मानते हैं।

भारत के भिखारी कानून सदियों पुराने यूरोपीय आवारा कानूनों का एक कारण हैं जो सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को संबोधित करने के बजाय गरीबों को उनकी स्थिति के लिए जिम्मेदार बनाते हैं। कानून में भिखारी की परिभाषा किसी को भी दिखाई देती है जो गरीब दिखाई देता है। भिखारी विरोधी कानून शहर के चेहरे से गरीबों को हटाने के उद्देश्य से है। सड़क पर सालों बिताने वाले भिखारियों को सीमित जगह में रहना बहुत मुश्किल लगता है। सरकार द्वारा संचालित भिखारी घरों में व्यावसायिक प्रशिक्षण के प्रावधान हैं। लेकिन ये तीसरी दर जेलों से भी बदतर हैं जहाँ अपराधी 10 साल तक की सजा काट सकते हैं। एक राष्ट्र के रूप में भारत को अपनी भीख मांगने वाली आबादी के लिए सोचने की जरूरत है। भारत में भीख की समस्या पर अंकुश लगाने के लिए हर क्षेत्र में सामाजिक-आर्थिक उपायों के लिए विश्व मानकों को प्राप्त करने के इच्छुक राष्ट्र के साथ एक व्यापक कार्यक्रम और मौजूदा कार्यक्रमों के पुनर्संरचना के लिए कहता है। भीख माँगने की समस्या के लिए परोपकारी दृष्टिकोण को चिकित्सीय और पुनर्वास कार्य द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

पृष्ठ 26 का शेष

शुरू करते हैं मसलन स्मृति दोष और कंपकंपी जैसे लक्ष्णों को दिखना, तब तक काफी देर हो चुकी होती है। इन लक्ष्णों के दिखने का मतलब होता है कि बीमारी कई साल से काम कर रही है। मस्तिष्क परिवर्तन वाले रोगों जैसे अल्जाइमर से जुड़े प्रोटीन का निर्माण रोग के लक्षण दिखने से 15 से 20 साल पहले ही शुरू हो जाते हैं।

शिक्षा संसदीय समिति रिपोर्ट, शिक्षा पाठयक्रमों का भगवाकरण करने के

एस. वी. सिंह

'नई दिक्षा नीति, 2020' लागू होनी शुरू हो गई है। शिक्षा में 'आमूलचूल वदलाव' राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (RSS) का हमेशा से ही पहला अजेंडा रहा है। भारतीय जनता पार्टी आरएसएस की राजनीतिक जत्थेबंदी है। आरएसएस की स्थापना 27 सितम्बर 1925 को नागपुर में हुई लेकिन 50 सालों तक एकदम हांसिए पर रहने के बाद देश की मुख्य राजनीतिक धारा में उसे प्रवेश का अवसर 1977 में ही मिला जब अपनी कुर्सी बचाने के लिए इंदिरा गाँधी द्वारा आपातकाल घोषित कर लोगों के सभी जनवादी अधिकारों को बलात छीन लेने के परिणाम स्वरूप कांग्रेस शासन के विरुद्ध जन आक्रोश की प्रचंड लहर देश भर में उठी। वो जन सैलाब इस व्यवस्था को भी बहा ले जा सकता था। उसी डर से जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में फटाफट जनता पार्टी गठित हुई जिसे शासक पूंजीपति वर्ग की हर संभव मदद की बदौलत गठित होते ही देश भर में चुनाव लड़ने के लिए संसाधनों की कोई कमी महसूस नहीं हुई। आरएसएस की तत्कालीन राजनीतिक जत्थेबंदी जनसंघ भी, जो उस जनता पार्टी की अंग बनी। 1977 में जनता पार्टी सरकार बनने के बाद जनसंघ को 'शिक्षा में आमूल चूल बदलाव' लाने के संघ के अजेंडे को कुछ हद तक लागू करने का पहला अवसर मिला।

आर. एस. एस. को शिक्षा का अपना अजेंडा लागू करने का दूसरा बड़ा अवसर 1997 में मिला जब अटल बिहारी वाजपेयी मंत्रिमंडल में संघ प्रचारक मुरली मनोहर जोशी मानव संसाधन मंत्री बने। ये दोनों प्रयास, लेकिन, आक्रामक नहीं थे। जन विरोध होने पर उस वक्त कदम पीछे खींच लिए जाते थे।

2014 के बाद परिदृश्य गुणात्मक रूप से बदल गया है। शिक्षा को, और खास तौर पर इतिहास को बदल डालने के अजेंडे को अब आक्रामक तरीके से लागू किया जा रहा है। जन विरोध होने पर अब कदम पीछे नहीं खींचे जाते, विरोध को या तो नज़रदाज़ कर दिया जाता है या उससे निबटने के उपाय ढूंढ जाते हैं। 'नई शिक्षा नीति' का तो वैसा विरोध भी नहीं हुआ जो निज़ाम की चिंता का कारण बनता। शिक्षा नीति बदल कर स्कूल पाठ्यक्रमों को संघ की मूल विचारधारा के अनुरूप बदल डालने की दिशा में शिक्षा संसदीय समिति का गठन और उसके द्वारा 'जनमत' जानने की नौंटकी कर सिफारिशों की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना एक बड़ी छलांग है। 'शिक्षा, महिला, बाल, युवा एवं खेल विषयों पर बनी संस्दीय समिति के अध्यक्ष आर एस एस के प्रमुख 'शिक्षावदि' डॉ विनय सहस्रबुद्धे है। 21 सदस्यीय इस समिति मे अकेले भाजपा के ही 12 सदस्य हैं। मतलब भाजपा अकेले ही बहमुत में है। उनके सहयोगी दलों जे.डी.यू, बीज जनता दल, अन्ना द्रमुक के 4 सदस्य हैं। बाकी दलों के एक-एक सदस्य हैं। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 30 नवम्बर 2021 को राज्य सभा अध्यक्ष कौ सौंपी। शिक्षा की इस महत्वपूर्ण समिति के अध्यक्ष बनाए गए, राज्य सभा सदस्य डॉ विनय सहस्रबुद्धे की योग्यताएं संक्षेप में इस तरह हैं; स्कूल के दिनों से ही राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से जुड़े, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (ABVP) के राष्ट्रीय सचिव रहे, प्रचारक रहे और आर एस एस की संस्था 'रामभाऊ महालगी प्रबोधनी' के डायरेक्टर हैं और भाजपा के उपाध्यक्ष रह चुके हैं। इतना ही नहीं, मोदी के पहले कार्य काल में तूफानी तरक्की और जनवाद के नए विलक्षण प्रयोग हुए है उन पर किताब "The Innovative Republic" (अभिनव गणतंत्र) भी लिख चुके हैं। अब तक उनके भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध कौंसिल (ICCR) का अध्यक्ष और इस समिति का अध्यक्ष होने और इस समिति की सिफारिशों पर पाठकों को हैरानी नहीं होनी चाहिए!!

सिफारिशें

- स्कूल पाठ्यक्रम की पुस्तकें, प्राचीन भारत में भरी पड़ी बुद्धिमता और वेदों में भरे भंडार से भरी होनी चाहिए। तब ही देश के छात्र शिक्षा के मामले में व्याप्त भेदभाव से मुक्त हो सकेंगे।
- भारत के आज़ादी आन्दोलन के इतिहास लेखन में बहुत गड़बड़ी हो रखी है। इसे दूर किया जाना चाहिए।
- स्कूलों में शिक्षा उसी तरह दी जानी चाहिए जैसे की नालन्दा, तक्षशिला और विक्रमशिला में दी जाती थी।

अध्यापकों को उसी तरह से पढ़ाने की ट्रेनिंग दी जानी जरूरी है।

- आज़ादी आन्दोलन के कुछ आन्दोलनकारियों, क्रांतिकारियों को एक दम ग़लत तरीके से दिखाया गया है, मानो वे अपराधी हों। इसे दुरुस्त किया जाना चाहिए।
- प्राचीन काल में गुप्त वंश, विक्रमादित्य, चोला राज्य, चालुक्य, विजयनगर, गोंडवाना, ट्रावनकोर और उत्तर पूर्व के अहोम राज्यों को उचित स्थान नहीं मिला है जिसे दुरुस्त किए जाने की ज़रूरत है। (मतलब इतिहास वस्तुपरक और तथ्यात्मक तरीके की जगह मुस्लिम और इसाई राज्यों को दराकिनार करके लिखा जाना चाहिए।)
- हमारा इतिहास मुस्लिम आक्रमण के महिमा मंडन से भरा पड़ा है। ये बहुत अन्यायपूर्ण है, इस विकृति को ठीक करते हुए इतिहास दुबारा लिखा जाना चाहिए।
- आज तक इतिहास को 'राष्ट्रीय' भावनाओं से लिखा गया, उसे राष्ट्रीय नज़रिए से लिखा जाना चाहिए।'राष्ट्रीय इतिहास, राष्ट्रीय गौरव और एकता' की भावना को इतिहास लेखन में उचित स्थान मिलना ज़रूरी है।
- महिलाओं के योगदान को उचित महत्त्व नहीं मिला है। वेदों, उपनिषदों, जातकों में महिलाओं के योगदान को महत्व दिए जाने की सिफारिशें की गई हैं। साथ ही अनेकों भुला दिए गए सेनानियों को उचित स्थान दिए जाने की बात है लेकिन ऐसा लगता है जैसे मंगल पांडे, रानी लक्ष्मीबाई, पंडिता रमाबाई, बिरसा मुडा, दादाभाई नौरोजी, बालगंगाधर तिलक, डॉ. अम्बेडकर, महात्मा गाँधी, पेरियार रामास्वामी, सुभाष चन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, एलुरी सीताराम राजू आदि को निज़ाम किनारे कर देना चाहता है।
- पूरी रिपोर्ट में इतिहास विषय पर सबसे ज्यादा जोर है। सत्तर और अस्सी के दशक में लिखे गए इतिहास और इतिहास पुस्तकों को खास निशाने पर लिया गया है। कोई भी आलोचना चूँकि ठोस तर्कों के आधार पर ना होकर मनगढ़ंत तरीके से की गई है इसलिए जो कहना चाहा गया है। तर्कहीन, विवेकहीन तरीके से गोल मोल लिखकर इतिहास को झूठलाने का प्रयास किया गया है इसी लिए भारतीय इतिहास कांग्रेस ने इन सिफारिशों को ख़ारिज करने में देर नहीं की।

मोदी सरकार ने पिछले साल जून में जब कोरोना कहर ढा रही थी तब अपने चिरपरिचित पैंतरे 'आपदा में अवसर' के तहत छात्रों, अध्यापकों और शिक्षाविदों से इस सम्बन्ध में सुझाव, ई मेल rsc_hrd@sansad.nic.in पर मांगने की औपचारिकता पूरी की थी जिसकी अन्तिम तारीख 5 जुलाई 2021 थी। हालांकि ये स्पष्ट है कि ये 'सुझाव' आर एस एस की विचार धारा के अनुरूप ही रहने थे, जैसे कि असलियत में रहे। कितने सुझाव आए, उनकी छानबीन कैसे हुई और किन सुझावों को किस आधार पर स्वीकार अथवा अस्वीकार किया गया, इसका कोई ब्यौरा उपलब्ध नहीं कराया गया। यही वजह है कि सिफारिशें/सुझाव भी उसी तरह के आए जैसे सरकार चाहती थी और उन्हें ही संज्ञान में ले लिया गया। 'सुझावों' की एक बानगी प्रस्तुत है।

अमेरिका के अलेक्सेन्ड्रिया विश्वविद्यालय में विदेशी भाषा विभाग के प्रोफ़ेसर डॉ. शोनू नांगिया द्वारा मोदी सरकार को भेजे गए सुझाव से आर एस एस की पहुँच और उसके विचारों का पता चलता है। शिक्षा में आगे क्या होने जा रहा है। इसका भी सही अंदाज़ उनके सुझावों से हो जाता है जो इस तरह हैं।

''इतिहास की पुस्तकों में अपनी जान कुरबान कर देने वाले कितने ही राष्ट्र भक्तों को कोई जगह नहीं मिली है जबकि क्रूर, रक्त पिपासू राजाओं जैसे टीपू सुल्तान का महिमा मंडन किया गया है। टीपू सुल्तान ने 700 अयंगर परिवारों को इसलिए मार डाला था। उनके गाँव मडयम में आज भी दीवाली नहीं मनाई जाती जबकि उसी टीपू सुल्तान को वामपंथी और मार्क्सवादी तिहासकार 'मैसूर का शेर' लिखतेहैं... रोमिला थापर जैसे इतिहासकार लिखते हैं कि सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध में हुआ खून खराबा देखकर बौद्ध धर्म अपना लिया और हिंसा छोड़ दी जबकि हकीकत ये है, जैसा कि महा वंषा और दिव्य वदाना ने बताया कि सम्राट अशोक अपने शासन के चौथे साल में ही बौद्ध धर्म ग्रहण कर चुके थे और कलिंग युद्ध उनके शासन के आठवें साल में हुआ। मतलब कलिंग युद्ध का खून खराबा उनके बौद्ध धर्म अपनाने के चार साल बाद हुआ। अशोक ने कुल 18000 ग़ैर बौद्ध धर्मियों का कत्ल किया और कसूरवार हिन्दुओं को ठहराया जाता है... 12वीं की इतिहास की पुस्तकों में पढ़ाया जाता है कि सभी मुगलों ने मंदिरों को दान दिया, शाहजहाँ और औरंगजेब ने मन्दिरों की मरम्मत कराई जबकि NCERT के पास इस बात का कोई सूबत नहीं है, जिससे सोशल मीडिया पर कितना हंगामा हुआ। भारतपुर निवासी आर टी आई कार्यकर्ता तपिंदर सिंह ने NCERT को इस सम्बन्ध में कानूनी नोटिस भेजा हुआ है... भारत की

असली समस्या ये है कि हिन्दुओं और सिखों के जो बलपूर्वक धर्मान्तरण हो रहे हैं उन्हें इतिहास में कभी नहीं लिखा जाता। ये आज भी हो रहे हैं जबकि हिन्दु कुल जनसंख्या के 75 प्रतिशत से भी अधिक हैं, आज भी हिन्दू, बलात्कार, हिंसा और धर्मान्तरण के शिकार हो रहे हैं, विभिन्न नस्लों में एकता के मिथ्या विचार पढ़ाए जाते हैं... हमारी महान संस्कृति को नहीं पढ़ाया जा रहा है... जो पढ़ाया जाना चाहिए वो ये है; महान भारतीय सभ्यता ने दुनिया को ज्ञान, संस्कार, विचार दिए, इस्लाम और ईसाई धर्मों ने समूची दुनिया को दूसरी तरह प्रभावित किया। अपनी संस्कृति में अभिमान, राष्ट्रभक्ति, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, भारतीय संस्कृति, योग पढ़ाया जाना चाहिए... अफ़गानिस्तान में तालीबान के सत्ता हथियाने से सबक लेते हुए देश के टुकड़े करने के मंसूबे पाले मार्क्सवादियों से सावधान रहने की जरूरत है।''

ये है सरकार की शिक्षा नीति का असल मकसद! जो बात देश के, संघ विद्वान कहते शरमाते हैं वहीं बात अमेरिका में बैठे इस विद्वान ने खुल कर रख दी।

'संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाल शिक्षा कोष' (UNICEF)' तथा 'संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठन (UNESCO)' ने दुनियाभर में बच्चों की शिक्षा पर कोरोना महामारी द्वारा हुए विनाशकारी शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक प्रभावों का अध्ययन किया है। इन संगठनों के भारत में सम्बद्ध प्रतिनिधि ने 23 जुलाई 2021 को भारत सम्बन्धी रिपोर्ट इस संसदीय समिति को सौंपी। संसदीय समिति ने उक्त रिपोर्ट को अपनी रिपोर्ट में शामिल किया है, ये अच्छी बात है। रिपोर्ट के मुख्य बिंदु इस तरह हैं।

1) कोरोना महामारी से भारत में कुल 15 लाख स्कूल और 13.7 लाख बाल विकास केंद्र बंद हुए जिससे कुल 28.6 करोड़ बच्चों की शिक्षा बुरी तरह प्रभावित हुई।
2) भारत में मौजूद कुल घरों में से 24 प्रतिशत घरों में ही इंटरनेट सुविधा है और 61.8 प्रतिशत घरों के पास ही स्मार्टफोन हैं।
3) कुल छात्रों में 40 प्रतिशत छात्र किसी भी साधन से डिजिटल शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए।
4) ग्रामीण भाग में शहरी भाग से 10 प्रतिशत कम से बच्चे ही डिजिटल शिक्षा ग्रहण कर पाए।
5) डिजिटल शिक्षा व्यवस्था से ना जुड़ पाने के कारण बच्चों को भयंकर मनोवैज्ञानिक तनाव झेलना पड़ रहा है। साथ ही ग़रीब बच्चों को भोजन की कमी का सामना करना पड़ा है जिससे उनका स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हुआ।

डॉ. विनय सहस्रबुद्धे की अध्यक्षता वाली इस शक्तिशाली संसदीय समिति को इस मुद्दे पर सरकार ने जवाब तलब करना चाहिए। 'विश्वगुरु' भारत में इतने बच्चे इन्टरनेट और स्मार्टफोन ना होने के कारण शिक्षा से महरूम हैं तो फिर स्कूल बंद हो जाने पर वे शिक्षा कैसे ग्रहण करेंगे? इस समिति को सरकार से जवाब मांगना चाहिए। समिति के अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्रबुद्धे को तो खुद ये बताना चाहिए कि मोदी के पहले शासन काल में इनती ज़बरदस्त तरक्की हुई है, जैसा उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है, तब देश में शिक्षा की इतनी दयनीय स्थिति कैसे है? इतनी बड़ी तादाद में ग़रीब बच्चों को 'सुदुर शिक्षा' ग्रहण करने लायक कब तक बनाया जाएगा?

''प्राचीन भारत महान था। मुस्लिम आक्रमणकारियों के आने से पहले का काल स्वर्णिम काल था। सब लोग प्रेम और सद्भाव से हर्षोल्लास में रहते थे। स्त्रियों का सम्मान होता था। सनातन धर्म में समाज में हर तरफ़ प्रेम की गंगा बहती थी। विज्ञान और तकनीक का अद्भुत विकास हो चुका था। दुनियाभर में जो भी आविष्कार आधुनिक युग में, औद्योगिक क्रांति के बाद हुए वे सब हमारे ऋषियों-मुनियों-वेदों-उपनिषदों में मौजूद ज्ञान को चुराकर ही हुए। हिन्दु श्रेष्ठ हैं, हमारी आर्य नस्ल महान है, हम महान हैं... आदि आदि''

ये खूबसूरत, मनभावन झूठ और ग़लतफहिमी आर एस एस / भाजपा की विचारधारा का मूल आधार है जिसे सही साबित करने की छटपटाहट उन्हें इतिहास से छेड़छाड़ करने और उसे विकृत करने की ओर धकेलती आई है। आईये, इस विषय पर वस्तु स्थिति जानने के लिए प्रख्यात इतिहासविदों का क्या कहना है, जे जानें।

'स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, कई भारतीय इतिहासकार पूर्व-इस्लामिक भारत के एक गैर-आलोचनात्मक महिमामंडन में लिप्त थे: भारतीय राज्य को एक सवैधानिक राजतंत्र के रूप में वर्णित किया गया था; जनजातीय कुलीन वर्गों की तुलना एथेनियन लोकतंत्र से की गई; दक्षिण भारत में ग्राम सभाओं (सभाओं) को छोटे लोकतंत्रों के रूप में चित्रित किया गया

शेष पृष्ठ 32 पर

जनमानस में बसे हैं पहाड़ के चंद्रसिंह गढ़वाली

सुधीर विद्यार्थी

कोटद्वारा पहुंचकर वीर चंद्रसिंह गढ़वाली, वैरिस्टर मुकुंदी लाल और शहीद चंद्रशेखर आजाद के साथी भवानी सिंह के चित्र एक साथ आंखों में तैरने लगते हैं। भवानी भाई के गांव नाथोपुर जाने का रास्ता दुगड्डा होते हुए है, जहां दिल्ली के 'गाडोदिया ऐक्शन' के बाद आज़ाद अपने कुछ सहयोगी क्रांतिकारियों के साथ कई दिन आकर रुके थे। कोटद्वार में झंडा चौक के निकट पेशावर कांड (1930) के क्रांतिकारी चंद्रसिंह गढ़वाली की प्रतिमा है। पतलून, कमीज़, आंखों पर मोटा चश्मा और सिर पर हैट, जो आजीवन उनकी पहचान बना रहा। पहाड़ियों की तरह बोलने का उनका लहजा हमें बहुत बांधता था, खासकर उनको बेलाग बातें और जीने का फकीराना ढंग। वर्ष 1972 में वह एक बार 'शहीद मेला' का उद्घाटन करने हमारे शहर शाहजहांपुर आए, तब की तस्वीरें हमारे जेहन में अभी जिंदा हैं। उन दिनों हम सोचते कि अपनी जवानी में वह कैसे रहे होंगे, जब पेशावर की पल्टन में रहते हुए उन्होंने देश की आजादी के निहत्थे आंदोलनकारियों पर गोली चलाने से इन्कार करने की बड़ी सजा पाई। वह उस दौर की सबसे बड़ी अहिंसक लड़ाई थी।

वह गढ़वाल के दूधातोली में सैणसेरा, पट्टी चैथान के रहने वाले थे। वहां पढ़ाई-लिखाई का कोई अर्थ नहीं था। चंद्रसिंह को भी स्कूल नहीं भेजा गया, पर वह अपनी कोशिशों से थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख गए। घर की कमजोर आर्थिक स्थिति के चलते वह भागकर फौजी में भर्ती हो गए। 'गांधी टोपी' और आर्य समाज उनकी जिन्दगी के हिस्सेदार हो चुके थे। क्रांतिकारियों का संग्राम उन्हें आकर्षित ही नहीं, उद्वेलित भी कर रहा था। पेशावर का उस दिन का सवेरा इतिहास-निर्माण की बाट जोह रहा था। खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में खुदाई खिदमतगार तैयार हो रहे थे। 23 अप्रैल, 1930 को हड़ताल हो गई थी।

कांग्रेस का जुलूस निकल रहा था, जिसकी तरफ सिफाहियों की बंदूकें थी। रिकेट ने हुक्म दिया, 'गढ़वाली, थ्री राउंड फायर।' लेकिन हवलदार चंद्रसिंह चीखकर बोले, 'गढ़वालियों, गोली मत चलाना' चंद्रसिंह के फैसले ने इतिहास को सुर्खरू कर दिया। अब वह 'हीरो' बन चुके थे-देशभक्त विद्रोही और गढ़वाली टुकड़ी के महानायक। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमे में उनके वकील बने मुकुंदीलाल। उन्हें जो सजा मिली, वह थी 1. जिंदगी भर काला पानी, 2. सारी जायदाद जब्त, 3. ओहदेदारी से उतारकर सिपाही दर्जे में रखना और 4. सिपाही से नाम काटकर खारिज कर देना। वह कैदी बनकर जेल की तरफ चल दिए। सलाखों के भीतर वह कट्टर कम्युनिस्ट बने। गांधी इर्विन समझौते के बाद जेल अधीक्षक ने उन्हें बुलाकर एक प्रार्थनापत्र पर दस्तखत कराना चाहा, जिसमें लिखा था, 'गांधी-इर्विन समझौते से सारे कांग्रेसी कैदी छोड़ दिए गए हैं। मैं आइंदा ऐसा अपराध नहीं करूंगा। मुझे माफ कर दिया जाए। चंद्रसिंह ने कहा कि मैं माफी मांगकर रिहा नहीं होना चाहता। मैं हथकड़ी-बेड़ी से नहीं डरता। उन्हें बरेली सेंट्रल जेल भेज दिया गया। चंद्रसिंह ने जेल में बहुत लड़ाई लड़ी। वर्ष 1937 में उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बनने पर भी वह नहीं छूटे। जवाहर लाल नेहरू जेल में उनसे मिलने आए। वह नैनी और लखनऊ की जेलों में भी रहे। नेहरू समेत सभी उन्हें 'बड़े भाई' कहने लगे थे। 26 सितम्बर,1941 को 11 साल, तीन महीने और 18 दिन बाद जब वह रिहा हुए, तब गढ़वाल में जान की बंदिश के साथ राजनीतिक व्याख्यान न देने की हिदायत भी थे। ऐसे में वह कहां रहते! नेहरू जेल से उन्हें लिखा कि कुछ दिन 'आनन्द भवन' में जाकर रहो। पर वहां भी वह ज्यादा टिके नहीं। गांधी ने एक दिन मिलने पर पूछा, 'तुम्हें खर्च-वर्च की जरूरत होगी?' चंद्रसिंह ने कहा, 'बापू मेरे हाथों में ताकत है। मैं अब जेल से

बाहर हूँ, घास काटूंगा, अपना खर्च चला लूंगा।'

आजाद हिन्दुस्तान में चंद्रसिंह को अनेक कष्ट उठाने पड़े। वह कोटद्वार के ध्रुवपुर में रहने लगे थे। एक अक्तूबर, 1979 को दिल्ली के एक अस्पताल में निधन के बाद उनकी इच्छानुसार उन्हें 'लाल झंडा' ओढ़ाया गया। उत्तराखंड के दूधातोली में उनकी समाधि है, पर जीवित रहते जिस धरती पर उन्होंने 'भरतनगर बसाने का सपना देखा, वह पूरा नहीं हुआ। वर्ष 1983 में सरकारी कर्जे की देनदारी के लिए उनकी संपत्ति को नीलामी से बचाने के लिए मुझे अखबारी आंदोलन चलाना पड़ा। उनके जन्मशती वर्ष पर हमने सरकार से डाक टिकट भी निकलवाया। वर्ष 2012 में बरेली केंद्रीय कारगार में उनके नाम पर द्वार का नामकरण व शिलापट्ट लगवाकर जैसे मैंने अपने इस पुरखे का श्राद्ध कर लिया। उनके साथ जेल में रहे विद्यासागर नौटियाल ने मेरे अनुरोध पर उनका यादनामा दर्ज किया, जो अधूरा रह गया। वर्ष 1992 में गैरसैण में उत्तराखंड की राजधानी बनाने की आधारशिला रखी गई, पर दूधातोली की उनकी समाधि ध्वस्त होने के कगार पर है। बिजनौर के कौड़िया रेंज में जो ज़मीन उनके परिवार को 90 साल के पट्टे पर दी गई थी, उसे भी बाद में उत्तर प्रदेश सरकार ने वापस ले लिया। चंद्रसिंह ने गढ़वाल से लोकसभा का चुनाव कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट पर लड़ा था, पर गढवाल की जनता ने उन्हें संसद नहीं भेजा। सिर पर हैट-लगाए पैदल चलते हुए टीन के भोंपू से चुनाव प्रचार करने की उनकी छवि अब किसे याद होगी। पहाड़ी जनमानस में क्रांतिकारी का उनका बाना अभी बरकरार है, पर उनके परिवार को सब भुला चुके हैं। 97608 75491

पृष्ठ 30 का शेष

था; गुप्त शासकों की अवधि को स्वर्ण युग के रूप में माना जाता था, जब भारतीय लोग खुश और समृद्ध थे और शांति और सद्भाव से रहते थे। प्राचीन भारत की इस तस्वीर ने स्वतंत्रता सेनानियों को एक वैचारिक समर्थन प्रदान किया; लेकिन भारत की आजादी के बाद इसने ऐसा कोई उद्देश्य पूरा किया, हालांकि हिंदुत्व के विचारक इन विचारों से चिपके हुए हैं, और उनसे प्रेरित होकर, हमारे प्रधान मंत्री ने भी कई मौकों पर भारतीय अतीत के बारे में हास्यास्पद बयान दिए हैं। लेकिन हमारे स्रोतों का एक वैज्ञानिक विश्लेषण यह साबित करता है कि इतिहास में किसी भी स्तर पर भारत के आम लोगों ने वास्तव में स्वर्ण युग नहीं देखा। भारत का इतिहास, किसी भी अन्य देश की तरह, सामाजिक असमानताओं, आम लोगों के शोषण, धार्मिक संघर्ष आदि की कहानी रहा है। भारत के साथ-साथ अन्य देशों में भी स्वर्ण युग के विचार का हमेशा दुरुपयोग किया गया है।''

प्रोफ़ेसर डी. एन. झा

''लेकिन इस संब के दौरान, खोये हुए स्वर्ण युग के प्राचीन गौरव के युग का कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता। मनुष्य ने समान रूप से या स्थिर रूप से प्रगति नहीं की; बल्कि उन्होंने सम्पूर्ण रूप से प्रगति की। एक काफी अक्षम जानवर से लेकर, औजार बनाने और औजार इस्तेमाल करने वाले प्राणी तक, जिसने अपनी संख्या के दम पर पूरे ग्रह पर प्रभुत्व जमाया और उसे अपनी विभिन्न गतिविधियों के द्वारा अब केवल खुद पर नियंत्रित करना सीखना है। कई दसियों हज़ार वर्षों के बाद खोदी गई मानव हड्डियों से पता चलता है किसी भी पुराने पाषाण युग के व्यक्ति के लिए चालीस वर्ष की आयु तक जीवन जी पाना एक शानदार उपलब्धि थी; आज से अधिक स्वस्थ होना तो दूर रहा, वह परजीवियों और शरीर तोड़ डालने वाली बीमारियों से भी अधिक पीड़ित रहता था जिसने उसके जीवन को बहुत छोटा कर दिया था। सुनहरा युग, यदि कोई है तो, भविष्य में है, अतीत में नहीं।''

डी. डी. कौशाम्बी

तथ्य आधारित, तर्कपूर्ण, वैज्ञानिक शिक्षा सामग्री की जगह स्कूल शिक्षा पाठ्यक्रम में मनगढ़ंत, कपोल कल्पित, गपोड़े शामिल कर शिक्षा का सत्यानाश करने के प्रोजेक्ट को नाकाम करो। शिक्षा के भगवाकरण के विरुद्ध जन आन्दोलन तेज़ करो। 83838 41789

क्रांति के रास्ते में अवरोधक और रोडे

मुनेश त्यागी

स्वर्णवाद, दलितवाद, पिछड़ावाद, जातिवाद और साम्प्रदायिकता केवल पूंजीवाद के पिछलग्गू हैं, उसके सहयोगी, रक्षक और बगलगीर हैं। इनका किसानों मजदूरों की सरकार से, किसानों, मजदूरों, नौजवानों, विद्यार्थियों और किसानों मजदूरों की मुक्ति से, उनकी समस्याओं से, इनका कोई नाता और रिश्ता नहीं है, उनसे कुछ लेना देना नही है।

साम्राज्यवाद और पूंजीवाद ने बड़े करीने से, जानबूझकर और भली-भांति इन्हें पाला और पोसा है, इनका दिशा निर्देशन किया है, इन्हें पैसों से मजबूत किया है। इन लुटेरों का मुख्य काम है स्वर्ण, दलित, पिछड़ा और ओबीसी के नाम पर जनता की एकता को तोड़ना, उसे खंड खंड करना और उसे बनाए रखना।

भारत में दुनियाभर के पूंजीवादी और साम्राज्यवादियों की नीति रही है कि इन तबकों को, किसानों, मजदूरों के साथ कोई वास्ता, संबंध नहीं रखने देना है, इन्हें किसानों मजदूरों के मंच पर संयुक्त एवं एकजुट कार्रवाई और लड़ाइयों से अलग थलग रखना है।

पहले अंग्रेज दो सौ वर्षों तक भारत में "बाटों और राज करो" कि नीति अपनाते रहे और भारत को गुलाम बना कर रखा और उसे लूट लूट का कंगाल कर दिया। अब आजाद भारत में हिंदुस्तान का पूंजीपति और सामंती वर्ग, विश्व की पूंजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के नेतृत्व में भारत की जनता को स्वर्ण, अगडा, पिछड़ा, दलित और ओबीसी के नाम पर बांट कर जनता की एकता को खंडित किये हुए हैं और अपनी पूंजीवादी साम्राज्यवादी लूट, शोषण, अन्याय और असमानता को बरकरार रखे हुए है।

दरअसल, यह देशी विदेशी लुटेरा वर्ग, आजादी की लडाई में भी जनता की एकता और जनता की एकजुटता से भयभीत रहता था और यह वर्ग आज भी जनता की, किसानों मजदूरों की एकता और एकजुटता से भय खाता है। यह तथ्य बड़ा ही आश्चर्यजनक है कि इन समस्त तबकों का कोई भी कार्यक्रम क्रांतिकारी और समाज में बुनियादी परिवर्तन करने वाला नहीं है। ये तमाम के तमाम तबके क्रांति विरोधी हैं, क्रांति के अवरोधक और रोडे हैं। समाज के क्रांतिकारी और बुनियादी बदलाव के और रुपांतरण के खिलाफ हैं। इन सब ने मिलकर भारत में क्रांति का रास्ता रोक दिया है क्रांतिकारी बदलाव की लड़ाई को धीमा और ज्यादा कठिन बना दिया है।

भारत की क्रांतिकारी ताकतों को इन सब मुद्दों पर इन तमाम तबकों से, उनके नेताओं और कार्यकर्ताओं व बुध्दिजीवियों से मिलजुलकर गंभीर विचार विमर्श करना होगा और जनता की "मुक्ति का कार्यक्रम" बनाकर और "जनता की मुक्ति" का नारा देकर इन वंचित, अभावग्रस्त, पिछड़े और गरीब तबकों को अपने कार्यक्रम और संघर्ष के दायरे में लाना होगा और क्रांति और समाज परिवर्तन के क्रांतिकारी मार्ग पर अग्रसर करना होगा। इसके अलावा भारत में क्रांतिकारी बदलाव का और कोई रास्ता और विकल्प नहीं रह गया है

यहां पर यह जानना और ध्यान रखना भी जरूरी है कि इन लोगों की विचारधारा, कार्यक्रमों और कार्यवाहियों से आम जनता को, आम भारतीयों को, किसानों मजदूरों को, सामना की जा रही बुनियादी समस्याओं रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सामाजिक असुरक्षा से कोई मुक्ति नहीं मिल सकती क्योंकि जनता की मुक्ति का, जनता की समस्याओं को समाप्त करने का, इनके पास न तो कोई कार्यक्रम है और ना ही इन समस्याओं को दूर करने के लिए ये ताकतें कोई संघर्ष करना चाहती हैं। हां बस इनको पद और पैसा चाहिए। हां यह जरूर है कि इन तबकों के नेताओं, रिश्तेदारों और लग्गे भग्गों ने अपने घर जरूर भर लिए हैं, अपना कल्याण जरूर कर लिया है।

यहां पर एक बात और नोट करने की है कि इन्होंने अपने घर भरने के अलावा पूंजीपतियों की तिजोरियां भरी हैं, उनके कार्यक्रमों और नीतियों को आगे बढ़ाया है, उनकी उदारीकरण निजी करण और वैश्वीकरण की नीतियों और मुहिम को आगे बढ़ाने में मदद की है, उसे विस्तार देने में अपनी पूरी जान लगा दी है, उनके मुनाफों में अनाप-शनाप वृद्धि की है। मगर यहीं पर देखा जाए तो इन्होंने अपने दायरे के जो गरीब, वंचित,

शेष पृष्ठ 36 पर

परामनोविज्ञान

वेद प्रिय

सन् 1968 के अंतिम दिनों की बात है जब श्री एच.एन.बनर्जी श्रीलंका में थे। वे अपनी ही तरह के प्रोफेसर, डॉक्टर और स्वयंभू निर्देशक राजस्थान विश्वविद्यालय थें वहां आपने अपनी खोजों में से पुनर्जन्म संबंधित कहानियों का एक संग्रह 'द सीलोन आब्जर्वर' में प्रकाशित किया। भारतीय समाचार पत्रिक 'लिंक' अंक 19 मई, 1968 से सामाभार सामग्री यहां दी जा रही है।

राजस्थान विश्वविद्यालय के परामनोविज्ञान विभाग एवं श्री बनर्जी के बारे में उनकी खोजें जानने के बाद ही हमें बेहतर जानकारी मिलेगी कि पुनर्जन्म संबंधित उनकी कहानियों में कितनी वैज्ञानिक प्रमाणिकता है और वे 'मस्तिष्क से परे स्मृत' के बारे में कितनी सही है।

इस लेख में यही कोशिश की गई हैंकि पाठकों को भारतीय शैक्षणिक माहौल और राजस्थान विवि द्वारा संचालित परामनोविज्ञान की खोजों के बारे में अवगत कराया जा सके।

आयोग की रिपोर्ट: विवि अनुदान आयोग की तीन सदस्यीय कमेटी ने राजस्थानविश्वविद्यालय के दर्शन विभाग की यूनिट 'परामनोविज्ञान' को समेटने की सिफारिश की है। अपनी रिर्पोट में कमेटी ने कहा है कि वर्तमान रूप में यह संसाधनों की बरबादी है, देश-विदेश के शैक्षिक समुदाय से कटना है परामनोविज्ञान के दावों को वैज्ञानिक अनुशासन के अंतर्गत नहीं रखता है। राजस्थान विश्वविद्यालय सिंडिकेट में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की इस रिपोर्ट पर बहस हुई तथा राजस्थान विश्वविद्यालय के कार्यवहक उपकुलपति डॉ.आर.सी. मेहरोत्रा ने पत्रकारों को बताया कि यह रिपोर्ट कानून मामलों की कमेटी के पास आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज दी है। इस कमेटी में प्रो.एस.पार्थासार्थी अवकाश प्राप्त प्रो.मनोविज्ञान ;श्री वैंकेटेश्वर विश्वविद्यालयद्ध, डॉ.आर. रथ प्रो.मनोविज्ञान ;उत्कल विश्वविद्यालय भुवनेश्वरद्ध तथा डॉ.एच.सी.गांगूली प्रगो.मनोविज्ञान ;दिल्ली विश्वविद्यालयद्ध शामिल थे।

इस रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि परामनोविज्ञान की यह यूनिट डाक्यूमेंटेशन करने में गुणवत्ता एवं मात्रा दोनों मामलों में कमजोर है। आंकड़े बेतरतीब लिए गए हैं और जिस प्रकार रिकॉर्ड किए गए हैं, उनसे इन आंकड़ों की तुलना करना असंभव है। इस प्रकार के अध्ययनों से जो चीज हम चाहते थे, यह यूनिट वह नहीं दे पाई। कार्डों के औपचारिक परीक्षणों से जो सूचनाएं मिली हैं वे वास्तविक आंकड़ों से मेल नहीं खा रही हैं।

रिपोर्ट में यह भी कहा है कि 1963 में जब से यह यूनिट स्थापित हुई है, पुनर्जन्म के केवल 700 मामले एकत्र किए हैं, इनमें से केवल 30 पर खोजबीन की गई है और केवल 3 पर ही लेख निकाले गए हैं। कमेटी यह महसूस करती है कि वे तीनों ही लेख कसी भी तरह से गंभीर खोज के लेख नहीं हैं। रिपोर्ट में कहा है कि परामनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत अतीन्द्रिय ज्ञान, माध्यम की स्थापना, मानसिक प्रयोगों का संग्रह, अतीन्द्रि ज्ञान पर योग के प्रभाव और सर्प दंश के इलाज जैसे घटनाओं पर केवल सतही अध्ययन है जो लोकप्रियता तक सीमित है।

रिपोर्ट में आगे लिखा है, इस ईकाई का वर्तमान में जोर इसी बात पर रहा है कि सुनी-सुनाई बातों और अखबारी रिपोर्टों को संग्रहित किया जाए। जिन तीन रिपोर्टों का गहन अध्ययन के रूप में दावा किया गया है, वे भी वैज्ञानिक परीक्षणों पर नहीं ठहरती हैं।

एक ढकोसला: दिल्ली से प्रकाशित होने वाली समाचार पत्रिका 'लिंक' ने श्री बनर्जी द्वारा की गई तथाकथित परामनोवैज्ञानिक शोधों पर स्वतंत्र रूप से जांच करने के बाद अपने 19 मई, 1968 के अंक में 'परामनोविज्ञान एक ढकोसला' शीषक से एक लम्बा लेख प्रकाशित किया। श्री बनर्जी स्वयं को केन्सास ;संयुक्त गणराज्य अमेरिका की किसी संस्था द्वारा डॉक्टरेट प्राप्त कहते हैं। उपकुलपति श्री वी.माथुर इनकी डाक्टरेट स्वीकार नहीं करते अपितु साधारण ही कहते है। केन्सास विवि को लिखे एक पत्र के उत्तर के हवाले से कहा गया है कि विवि ने ऐसे किसी नाम को डाक्टरेट की उपाधि नहीं दी है। श्री बनर्जी ने अतीन्द्रिय ज्ञान या पूर्ण संज्ञान जैसे विषयों पर वैज्ञानिक कार्य कर विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं किया है। उनका दावा है कि उन्होंने मस्तिष्क से परे स्मृति विषय पर

अध्ययन किया है। यह एक गलत वैज्ञानिक शब्द जो पुनर्जन्म आदि के लिए प्रयोग किया जताता है। उनका कहना हे कि उन्होंने 'मस्तिष्क परे स्मृति' पर 700 मामले एकत्र किए हैं। इन व्यक्तियों के बारे में माना गया कि इन्हें अपने पूर्व जन्मों की घटनाएं याद हैं। इन तथाकथित पुनर्जन्मों के बारे में छपे लेख पढ़ने पर ऐसा लगता है मानो उमंग भरे रोचक फिक्शन हों

श्री बनर्जी का श्रीलंका जाने का कार्यक्रम बना । उनका दावा है कि वटापोशिया गांव में एक डाकमाणु के घर जन्मी बच्ची को अपने पूर्व जीवन की घटनाएं याद हैं। यह बच्ची रूवी कहती है कि पूर्व जन्म में वह एक लड़का थी। वह बताती है कि वह स्कूल जा रही थी, एक कुंए में गिर गई और उसकी मृत्यु हो गई। रूवी के रूप में पैदा हुआ बच्चा रूवी के जन्म से कई वर्ष पूर्व 1956 में ही मर गया था। इस बीच के समय का कोई वर्णन नहीं है।

इससे पूर्व श्री बनर्जी गंगानगर के एक कॉलेज में दर्शन शास्त्र पढ़ाते थे। कुछ विशेष किए जाने के भाव से प्रेरित होकर इन्होंने 'परामनारेविज्ञान' को अपनाने का विचार बनया। ऐसा बताते हैं कि गंगानगर के एक धनी व्यक्ति ; जो पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वास रखते थे ने इन्हें धन दिया जिससे एक संस्था स्थापित की जा सके। डा . सम्पूर्णानंद ने भी इन्हें धन दिया। उनदिनों डॉ. सम्पूर्णानंद राजस्थान के राज्यपाल के नाते विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में गंगानगर गए हुए थे। उन्होंने ही विश्वविद्यालय अधिकारियों को उनकी खोजों के लिए उन्हें स्थान देने के लिए कहा। श्री बनर्जी स्वयं अपने औजार व सामान लाए और 'परामनोविज्ञान' की इकाई स्थापित की। विश्वविद्यालय का नाम प्रयोग करने का अवसर उनके लिए वरदान साबित हुआ। अपनी इकाई को वे विवि का 'परामनोविज्ञान विभाग' कहते थे। इसी को लेकर उन्होंने एक अभियान चलाया और अमेरिकियों को अपनी ओर आकर्षित किया जो इस प्रकार के फालतु अध्ययनों के शौकीन थे।

जिन व्यक्तियों के बारे में कहा जाता है कि उन्हें अपने पूर्वजन्मों की घटनाएं याद हैं, उन्हें कभी वैज्ञानिक कसौटियों पर नहीं कसा गया। एस.एस.एस. के अधीक्षक डॉ.बी.के.व्यास ने बताया कि उन्होंने बनर्जी को सुझाया कि ऐसे व्यक्तियों पर दवाओं के अन्तर्गत मानसिक परीक्षण किए जाने चाहिएं। इसमें उनके मस्तिष्क की कार्यप्रणाली का पता चलगा और सच्चाई सामने आ जाएगी। लेकिन बनर्जी साहब नहीं माने। प्रो. व्यास कहते हैं कि मेरे अध्ययन के अनुसार पुनर्जन्म वाले व्यक्ति दोहरे चरित्र के उदाहरण होते हैं। इनका इलाज किया जा सकता है और सच्चाई सामने लाई जा सकती है। प्रो. व्यास ने यह भी बताया कि ऐसे केस उनके पास इलाज के लिए आ चुके हैं।

श्री बनर्जी जयपुर के जिस एक केस का दावा करते हैं, वह पूरी तरह असफल रहा। उनका दावा था कि प्रचार विभाग के एक अफसर की पुत्री को अपने पूर्व जन्म की घटनाएं याद हैं। लेकिन जब उसे अपने पूर्व जन्म स्थान बीकानेर ले जाया गया तो वह अपना स्थान भी नहीं बता सकीं। 'लिंक' द्वारा जांच करने पर पता चला कि कि श्री बनर्जी के घर काम करने वाली औरत ही उस अफसर के घर नौकरानी थी। इस नौकरानी के कारण ही यह मामला थोड़ा आगे बढ़ पाया।

कुछ विशेष करने के प्रयासों के कारण ही कल्पना का यह अभ्यास शुरू हुआ। इसी के फलस्वरूप श्री बनर्जी एवं राजस्थान विवि के बीच लगातार तनाव बना रहा। अधिकांश विद्वान बनर्जी के इस काम को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। जहां तक अमेरिकियों व दूसरे देशों की बात है तो जो मनोचिकित्सक अमेरिका आदि हो आए हैं वे बताते हैं कि इस प्रकार के ढकोसलों के आगे बढ़ाने वाले बहुत से अमेरिकी मिल जाते हैं।

बनर्जी के लगातार विदेशी दौरे उसके कार्यों पर बहुत रोचक प्रकाश डालते हें।विवि इस बारे में कुछ नहीं कहता दिखाई देता हैं विवि के अधिकारी यह कहते हैं कि हम उनके इन देश-विदेश के दौरों के लिए पैसा नही दे रहे हें, फिर हम क्यों चिंता करें कि किस स्रोत से उनके पास यह धन आ रहा हैं उनकी चिंता तो यह हैकि श्री बनर्जी स्वयं को विवि के एक विभाग के अध्यक्ष बतला रहे हैं। विदेशी इस बात से प्रभावित हैं क श्री बनर्जी सारा पत्राचार राजस्थान विवि के नाम पर कर रहे हैं।

एक बार श्री बनर्जी राष्टपति डॉ. जाकिर हुसैन से मिले जब वे जयपुर दौरे पर थे। उन्होंने राष्ट्रपति महोदय को बताया कि राजस्थान विश्वविद्यालय का परामनोविज्ञान केंद्र को बंद करने के लगातार धमकियां मिल रही हैं। इसे आपके संरक्षण की जरूरत है। उन्होंने कहा कि पुनर्जन्म विज्ञान विश्वसनीय है और यह ऐसी बात है जिस पर यकीन नहीं किया गया हैं श्री बनर्जी ने पुनर्जन्म संबंधित सैकड़ों कहानिया एकत्र की हैं परंतु जब तक वे वैज्ञानिक परीक्षणों पर खरी नहीं उतरती हैं तो उन्हें झूठ ही माना जाएगा।

विश्वसनीय: श्री बनर्जी द्वारा लिखित पुनर्जन्म कीकहानियां पूर्ण सत्य एवं तथ्यपरक नहीं स्वीकार की जा सकती। वैज्ञानिक शोधकर्ताआं के विपरीत श्री बनर्जी तथ्यों को

दबा रहे हैं जो ठीक नहीं है। और जो उनके पक्ष में जाते दिखाई देते हैं, उन्हें बढ़ावा दे रहे हैं और उन्ही के आधार पर अपनी पसंद की थ्योरी को सिद्ध कर रहे हैं। दिल्ली के गोपाल की पुनर्जन्म की कहानी जो 21 दिसंबर, 1968 को 'सिलोन आब्जर्वर' में छपी थी उसकी जांच टीम में शामिल वैज्ञानिकों ने बताया कि श्री बनर्जी द्वारा वर्णित यह कहानी सत्य से परे है। ऐसी ही कहानी अगस्त 1965 के भारतीय समाचार पत्रों में छप चुकी है और जिसके पूरे तथ्य उनके पास हैं।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' में यह कहानी पढ़ने के बाद 22 अगस्त, 1965 को दिल्ली के श्री नित्य चैतन्य यति ने इस केस की जांच हेतु विश्वविद्यालय के दिग्गजों की एक पार्टी आयोजित की। इसमें श्री बनर्जी को भी बुलाया गया था। इसमेंअन्य सदस्य थे डॉ. गांगुली प्रो. मनोविज्ञान ; दिल्ली विश्वविद्यालयद्ध, डॉ. गुप्ता प्रो. मनोचिकित्सा ; दिल्ली विश्वविद्यालयद्ध, डॉ. पी.के. इरसी प्रवक्ता मनोविज्ञान ; दिल्ली विश्वविद्यालयद्ध और डा. पी.के.माथुर प्रो. मनोविज्ञान ; राजस्थान विश्वविद्यालयद्ध।

यह कहानी गोपाल की थी। गोपाल का दावा था कि वह पूर्वजन्म में शक्तिपाल शर्मा थे जो दिल्ली से कुछ दूर ड्रग फैक्ट्री के मैनेजर थे। दिल्ली से गोपाल के पिता श्री एस.डी.गुप ने बताया कि उनका बेटा 3 वर्ष की आयु से ही मथुरा में अपनी पूर्व जन्म में पत्नी और बच्चों की बाबत बातें करता रहा है। गोपाल का कहना है कि उनके छोटे भाई ने ही उनकी हत्या की थी। यह बच्चा अपनी पत्नी और बच्चों से मिलना चाहता था इसलिए इनके पिता जी इन्हें मथुरा ले गए।

पिता के अनुसार बच्चे ने अपना पुराना मकान व गली, अपना ड्रग स्टोर, अपनी पत्नी व बच्चों को पहचान लिया। उसने वह स्थान जहां उसकी हत्या हुई थी व घर के एक ग्रुप फोटों के सभी व्यक्तियों को पहचान लिया।

'सीलोन आब्जर्वर' में छपे इस लेख के बारे में श्री बनर्जी कहते हैं कि घटनाओं की पड़ताल करने पर यह केस फ्राड नजर नहीं आता। क्योंकि उनके पिता ने इस केस का न तो प्रचार प्रसार किया और न ही कोई आर्थिक हित साधा। फ्राड तो प्रोत्साहित होना चाहिए। इसे स्मृति दोष कह कर भी अलग नहीं किया जा सकता। क्योंकि बच्चे द्वारा बताई सभी बातों की पड़ताल कर ली गई थी। बच्चे द्वारा ठीक पहचानी गई बातों को हम कैसे स्पष्ट करेंगे, और उस व्यवहार को कैसे स्पष्ट करेंगे जो उसने अलग-अलग व्यक्तियों के साथ किया था?

इस देश के पाठकों के भले के लिए उस जांच टीम के नेता श्री नित्य चैतन्य यति द्वारा इस केस की बाबत लिख गया बताया जाना चाहिए। श्री यति लिखते हैं कि गोपाल की माता जी ने आंखों में आंसू भर कर हमें जो बताया है रहस्य उद्घाटन करने व चौंकाने वाला हैं ये सब मेरे पित द्वारा बनाई कहानियां हैं। मुझ विश्वास हे कि मेरे बच्चे दिमाग में सब बकवास भर कर पागल कर दिया जाएगा। मुझे विश्वास है कि मेरे पित द्वारा इस प्रकार मस्तिष्क साफ करने के कारण ही मेरा बच्चा पिछले वर्ष परीक्षा में फेल हो गया।

श्री यति कहते हैं कि यदि वैज्ञानिक जांच करने वाले व्यक्ति अपने स्वयं के विश्वासों द्वारा मार्गदर्शन पाते हैं तो वह दिन विज्ञान के लिए दुर्भागय का दिन होगा। बच्चे गोपाल को अपने पूर्व जन्म की बिल्कुल भी स्मृति नहीं थी। वह सब कुछ वहीं तक रहा था जो कुछ उसके पिता ने सिखाया था। इस बच्चे की स्मृति शक्ति की भी जांच की जानी चाहिए कि जो कुछ उसके पिता जी ने सिखाया था, वह तो उसे भी अच्छी तरह याद नहीं करवा पाया। उसके माता जी एक समझदार औरत जान पड़ती है। पिता जी के इस मामले में अन्य हित होंगे। उसके पिता जी की लम्बी मनोचिकित्सा बेहद जरूरी है।

पृष्ठ 33 का शेष

शोषित, पीड़ित और अन्याय और उपेक्षा के शिकार लोग हैं उनके लिए न तो कोई प्रभावी और कारगर कार्यक्रम बनाया है ना कोई संघर्ष किया है और ना ही कोई संघर्ष करने की इच्छा रखते हैं, हां दिखावे के लिए ये कुछ भी कह या कर सकने का दिखावा कर सकते हैं।

आम जनता को, किसानों मजदूरों नौजवानों को, बुनियादी समस्याओं से मुक्ति दिलाने के लिए दलितों और पिछड़ों को, किसानों मजदूरों और वामपंथियों के साथ क्रांतिकारी मोर्चा बनाना पड़ेगा और जनता की मुक्ति का प्रोग्राम जनता के सामने पेश करना होगा और इस प्रोग्राम के पीछे जनता को लामबंद करना होगा और इस जनविरोधी, पूंजीवादी, साम्राज्यवादी, सामंती, फासीवादी निजाम और गठजोड़ को बदलना होगा, तभी जाकर जनता को इन बुनियादी समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है और क्रांति का कारवां आगे बढ़ाया जा सकता है और क्रांति के इन जनविरोधी अवरोधकों और रोडों को हटाया, हराया और अलग थलग किया जा सकता है।

आखिर सरकार फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य से क्यों भाग रही है

डा. सुखपाल सिंह

किसान आंदोलन ने केंद्र सरकार से तीन कृषि कानूनों को रद्द करवा दिया है। सरकार ने किसानों की लगभग सभी मांगें मान ली हैं पर फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की कानूनी गारंटी की मांग अभी पूरी नहीं हुई। वास्तव में समस्या क्या है? सरकार फसलों के एमएसपी की कानूनी गारंटी क्यों नहीं दे रही, इसका सबसे बड़ा कारण कृषि क्षेत्र पर कॉरपोरेट सेक्टर की नियंत्रण करने की मंशा में छुपा हुआ है। वास्तव में पूरी दुनिया का पूंजीवाद बहुत गहरे संकट से गुजर रहा है। नव उदारवाद के इस दौर में समस्त आर्थिकता, विशेषकर उद्योग और निर्माण क्षेत्र के विकास की दर बहुत ही धीमी या ऋणात्मक है। कॉरपोरेट अपने संकट में से निकलने के लिए कृषि क्षेत्र पर कंट्रोल करना चाहते हैं और वे 'कृषि सुधारों' के लिए तत्पर हैं। इस संदर्भ में कॉरपोरेट घरानों की एड़ी-चोटी के जोर से सत्ता पर विराजमान सरकार देश की सभी फसलों के एमएसपी को कानूनी गारंटी देने से भाग रही है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य की कानूनी गारंटी न देने का दूसरा कारण खाद्य पदार्थों पर कॉरपोरेट सेक्टर के कब्जे से संबंधित है। आज पूरी विश्व आर्थिकता में खाद्य पदार्थों की बड़ा अभाव आने का अंदेशा बना हुआ है। जलवायु परिवर्तन होने के कारण जल, बाढ़, सूखा, बहुत ज्यादा गर्मी आदि के गंभीर संकट से कृषि का प्रभावित होना लाज़मी है जिससे भुखमरी फैलने की आशंकाएं जताई जा रही हैं। वास्तव में कॉरपोरेट सेक्टर का मुख्य उद्देश कृषि में से बड़ी आबादी को बाहर निकालना और आधुनिक तकनीक से कृषि क्षेत्र में निवेश करना है। औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त उत्पादन (जो लोगों को जरूरत होते हुए भी, क्रय शक्ति न होने के कारण, बिना बिके रह जाता है) होने के कारण ही कॉरपोरेट क्षेत्र का किसी और क्षेत्र में निवेश करने के लिए जगह ढूंढना है। यह क्षेत्र सिर्फ कृषि ही है जहां बड़ा निवेश करने की संभावनाएं मौजूद हैं। इसीलिए भारतीय कौशल विकास कौंसिल की सिफारशें हैं कि भारतीय कृषि में लगी श्रम शक्ति को घटाया जाए ताकि श्रम उत्पादकता को बढ़ाया जा सके। पर वास्तविक स्थिति यह है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि में से निकली बड़ी श्रम शक्ति को किसी और क्षेत्र द्वारा आत्मसात किए जाने की संभावनाएं नजर नहीं आतीं।

अमेरिका और दूसरे पूंजीपति देशों द्वारा चौथी औद्योगिक क्रांति को इस प्रकार प्रचारित किया गया कि इससे पूंजीवादी आर्थिकता के संकट को हल किया जा सकता है। इस क्रांति में कृत्रिम बुद्धिमता को कृषि और अन्य क्षेत्रों में इस्तेमाल करने पर जोर दिया जा रहा है। इस काम के लिए विश्वविद्यालयों व अन्य संस्थाओं में प्रोजेक्ट दिए गए हैं और कॉन्फ्रैंस, सेमीनार, गोष्ठियां आयोजित की जा रही हैं। इस बात को बड़े जोर शोर से प्रचारित किया जा रहा है कि इस डूबते हुए आर्थिक प्रबंध को डिजीटलाईजेशन और रोबोटाईजेशन के बिना बचाया नहीं जा सकता, जो कॉरपोरेट ही कर सकते हैं। केंद्र सरकार ने किसान उत्पादक संगठनों/कंपनियों (एफ.पी.ओ/सी) के माध्यम से किसानों और दूसरी श्रम शक्ति को तैयार किया कि वे कॉरपोरेट खेती में एक एजेंट के तौर पर काम करें। इस संदर्भ में विश्वविद्यालयों में एग्री-बिजनैस के कोर्स चलाए गए ताकि कंपनियों को शिक्षित कर्मियों की कमी का सामना न करना पड़े। विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र संगठन ने दुनिया में खाद्य पदार्थों की बड़ी कमी होने की चेतावनी दी है। 2020 का नोबेल शांति पुरस्कार संयुक्त राष्ट्र खाद्य कार्यक्रम को दिया गया जिसके द्वारा 88 देशों के 10 करोड़ लोगों को भुखमरी से बचाने के लिए खाद्य पदार्थ उपलब्ध करवाए गए थे। इस संस्था को 2021 में फिर कहा गया कि वह अनाज/खाद्य पदार्थों का प्रबंध करे ताकि लोगों को भुखमरी से बचाने के लिए खाद्य पदार्थों की संभावित कमी से निपटा जा सके। इस तरह चौतरफा समझ से ही उभारा गया कि कॉरपोरेट खेती ही एक ठोस हल है। इसलिए सरकारी निवेश और फसलों के सरकारी खरीद प्रबंध से पांव पीछे खींचे जा रहे हैं।

वर्तमान दौर में दुनिया की बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां एग्री बिजनैस क्षेत्र में से मोटे मुनाफे कमा रही हैं। भारत में भी अड़ानी इस क्षेत्र में काफी अग्रिम चरण में पहुंच गया है। अड़ानी एग्री लॉजिस्टिक लिमिटेड ने सीधे रेलवे लाइनों से

जुड़े अति-आधुनिक हाईटेक साइलो तैयार किए हुए हैं। इनमें 2007 में मोगा(पंजाब) में 2 लाख टन अनाज की क्षमता वाला लगभग 700 करोड़ रुपये की लागत से साइलो बनाया है। इसी तरह 2013 में कैथल (हरियाणा) में 2 लाख टन की क्षमता वाला अनाज का साइलो बनाया गया है। इस के अलावा 2007 में चेन्नई, कोइंबटूर और बंगलौर में 25-25 हजार टन की क्षमता वाले और 2013 में मुंबई में 50 हजार टन और हुगली में 25 हजार टन वाले और 2017 में कपूरथला में 25 हजार टन की क्षमता वाले फील्ड डीपो बनाए गए हैं। वास्तव में अड़ानी पंजाब, हरियाणा, तामिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पश्चमि बंगाल से भारतीय खाद्य निगम के लिए लगभग 5.75 लाख टन अनाज का प्रबंधन करता है। इस के अलावा अड़ानी ने उत्तर प्रदेश, बिहार और गुजरात में भी अपना कारोबार बढ़ाया है। इतने उन्नत स्तर पर पहुंचने के बाद कार्पोरेट जगत सरकार पर दबाव बना रहा है कि एमएसपी को कानूनी मान्यता न दी जाए।

वास्तव में एमएसपी के मुद्दे को संवेदनशीलता के साथ विचाराधीन लाने की ज़रूरत है। सब से पहले देखा जाए कि एमएसपी का विस्तृत अर्थ क्या है? एमएसपी से तात्पर्य किसानों को उनकी फसल की, उस पर आई लागत के मुताबिक, न्यूनतम कीमत प्रदान करना है। अगर फसलों के एमएसपी के अतीत पर नज़र डालें तो पता चलता है कि 1964 में एल.के.झा कमेटी की सिफारशों के अनुसार खेती लागत मूल्य कमीशन और भारतीय खाद्य निगम बनाए गए थे जिनकी देखरेख में फसलों की खरीद और भंड़ारण का प्रबंध करना शुरू किया गया। आरंभ में दो कीमतें घोषित की जाती थीं- एमएसपी और खरीद कीमत। लेकिन 1973-74 के बाद खरीद कीमत, जो कि एमएसपी से ज्यादा होती थी, को घोषित करना बंद कर दिया। भारत सरकार 23 फसलों का एमएसपी घोषित करती है। इनमें से 7 अनाज (गेंहू, चावल, मक्का, बाजरा, ज्वार, रागी, जौ), 5 दालें (चना, मूंग, अरहर, मसूर, मोठ), 7 तेल बीज (मूंगफली, सोयाबीन, सरसों, तिल, सूरजमुखी, नाइज़र बीज, कसुंभी) और 4 व्यापारिक (कपास/नरमा, खोपरा, पटसन, गन्ना) फसलें हैं। इनमें से पंजाब, हरियाणा और पश्चमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र से गेंहू और चावल की पूरी खरीद और कुछ और राज्यों में फसलों की संपूर्ण नहीं बल्कि सीमा निर्धारित करके खरीद की जाती है। वास्तव में 23 फसलों की कीमत तय करने के लिए स्वामीनाथन कमेटी द्वारा प्रस्तावित एमएसपी(सी2+50%) फार्मूला किसानों को उनकी फसलों के लिए उचित मूल्य प्रदान करने का बेहतर विकल्प है। इस के उपरांत रमेश चंद्र कमेटी ने सी2 में कुछ और खर्चे जोड़ने का सुझाव दिया जिसमें परिवार के मुखिया को शारीरिक(गैर तकनीकी) मजदूर की बजाय एक कुशल या तकनीकी श्रमिक माना जाना चाहिए- जिसका अर्थ है कि उसकी मजदूरी ज्यादा होनी चाहिए। दूसरा, कार्यशील पूंजी पर ब्याज का अनुमान आधे वर्ष के लिए लगाने की प्रचलित प्रथा के उल्ट पूरे वर्ष के लिए गिनना चाहिए। तीसरा, वास्तविक भूमी लगान/किराया खर्चे में गिना जाना चाहिए, न कि उसकी उच्चतम सीमा निश्चित की जाए। अंत में रमेश चंद्र कमेटी ने कहा कि फसली उत्पादन के बाद की लागतें जैसे फसल को मंडी में ले जाना, सफाई, ग्रेडिंग, सुखाना, पैकेजिंग और मार्किटिंग के खर्चे भी शामिल होने चाहिएं। एमएसपी निर्धारित करते वक्त देश में उपज का भंडार और अंतरराष्ट्रीय मंड़ी में फसलों की कीमतों को भी ध्यान में रखा जाता है जिनका किसान की उपज की लागतों से तनिक भी संबंध नहीं है। वास्तव में किसान की आर्थिक दशा ठीक करने के लिए एमएसपी को रमेश चंद्र कमेटी अनुसार सी2 का अनुमान लगा कर 50 प्रतिशत बढौतरी के साथ तय किया जाना चाहिए।

सरकार नव-उदारवाद और नीतिगत तौर पर विश्व व्यापार संस्था की नीतियों के अनुसार खेती उपजों की बाजार कीमतें हर संभव कोशिश करके नीचे ऱख रही है। सरकार की तरफ से इस मुद्दे को बड़े जोर-शोर से उभारा जा रहा है कि सभी फसलों की सरकारी खरीद नहीं हो सकती क्योंकि इस काम के लिए 17 लाख करोड़ रुपये की राशि की जरूरत है। वास्तव में भारत में 23 फसलों के पूरे उत्पादन का एमएसपी पर मूल्य 9 लाख करोड़ बनता है परंतु पूरे का पूरा उत्पादन कभी भी मंडी में नहीं जाता। परिवार की खाद्य जरूरतें, पशुओं के चारे और बीज के लिए रखने के बाद मंडी में पहुंचे उत्पादन को अगर एमएसपी पर खरीदना हो तो कुल 7.7 लाख करोड़ रुपये ही चाहिए। इतनी रकम की भी एक साथ नहीं, बल्कि रबी-खरीफ आदि दो-तीन पड़ावों में जरूरत होगी। सरकार की तरफ से खरीदी गई फसल अगर थोक कीमतों पर भी बेची जाए तो उसे इसके बराबर की रकम ही हासिल हो जाती है।

निष्कर्ष यह है कि फसलों की एमएसपी पर खरीद की कानूनी गारंटी देना संभव भी है और बेहद जरूरी भी। पर

शेष पृष्ठ 42 पर

चमत्कारों का धंधा

ज्योतिर्मय

यह जानकर हैरानी होती है कि एक ओर तो हम अपने आप को ज्ञानविज्ञान के पुरातन आविष्कर्त्ता और संसार को नई रोशनी दिखाने वाले जगदगुरु कहते हैं तथा दूसरी और विज्ञान के युग में भी चमत्कारों, सिद्धान्तों और देवी देवताओं के आगे सिर झुकाने से लेकर अपनी जेब उलटते रहते हैं,

सामान्यत: चमत्कार उसे कहते हैं जिस का कोई कारण समझ में नहीं आए। पर हमारी परिभाषा इस से भिन्न ही है। हम समझते हैं कि जो व्यक्ति हमारे मन की बात बता दे, वही चमत्कारी है। उन सिद्धान्तों और देवी देवताओं को भी अलौकिक शक्तिसंपन्न मान लिया जाता है। जहाँ से किसी तरह प्रेतबाधा खत्म होने, रोग मिटने और भाग्य चमकने का आश्वासन मिलता है।

यह बात अब किसी से अनजानी नहीं रही है कि बिना कारण कोई कार्य नहीं होता। अधिकांश प्राकृतिक घटनाओं का कारण भी जान लिया गया है। फिर भी लोग किन्हीं वायवीय शक्तियों की कल्पना कर के उन के उत्पीड़न को मिटाने के लिए अथवा नौकरी में उन्नति, मुकदमे में जीत और घर में संतान प्राप्त करने के उद्देश्य से उन चमत्कारों के चक्कर में आते रहते हैं जिनका न कोई आधार है और न अस्तित्व।

ऐसा नहीं है कि इन चमत्कारों पर केवल अशिक्षित और गाँव के लोग ही विश्वास करते हैं। सुशिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत कहे जाने वाले व्यक्ति भी संबंधित स्थानों या व्यक्तियों के आसपास अंध श्रद्धा के वशीभूत हो कर अपना समय और श्रम नष्ट करते हैं। इस तरह चमत्कारी बनना या चमत्कारों को बल पर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना एक अच्छा खासा व्यवसाय बना हुआ है। इस आधार पर अपनी दुकान चलाने वालों को एक वर्गों में बांटा जा सकता है।

पहला वर्ग उन व्यक्तिों का है जो अवतारी पुरुष बने हुए हैं। ऐसे लोगों के साथ सुदृढ़ प्रचारतंत्र होने के कारण शिष्यों की एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। वे जनता में उन के एजेंट का काम करते हैं।

इन की संख्या सैंकड़ों में हैं और इन के आसपास गढ़ी गई चमत्कारी विशेषताओं के कारण ही लोग आकृष्ट हो कर इन के पास दौड़े आते हैं। इन की शिष्य संख्या लाखों में हैं। ऐसे भी अवतार हैं जिन के शिष्य या अनुयायी कुछ हजार व्यक्तियों से लेकर पांचसात सौ तक हैं। उन की घोषणा बड़ी अजीबोगरीब और करतब हास्यास्पद हैं।

जैसे मेहर बाबा किसी से बात नहीं करते थे। अपने मौन के संबंध में उन का कहना था कि जिस दिन मैं अपना मौन तोडूंगा, इस दिन खंड प्रलय हो जाएगा और एक नए युग का आरंभ होगा। जन्म से पारसी मेहरबाबा चालीस वर्ष तक मौन रहे। वह अपने सारे वक्तव्य लिख कर ही दिया करते थे। सन 1958 में उन्होंने एक वक्तव्य किया था, ''मैं सत्य की जीवनधारा बहाऊँगा, जिस के लिए मैं आया हूं, मैं लोगों के सामने अपने आप को प्रकट नहीं करता और कुछ चुने हुए लोगों पर ही अपना जमाल प्रकाशित करता हूं। जब मैं मौन तोडूंगा तो मेरे प्रेम की तरंग ब्राह्मांड भर में व्याप्त होगी। मैं इस युग का अंतिम अवतार हूँ, इसलिए मेरा प्रकटीकरण अपूर्व होगा।''

मेहरबाबा के जीवनकाल में देशविदेश में उन के हजारों शिष्य बने और किसी से बातचीत न करने पर भी उन का जीवन बड़े आराम से बीता।

भगवान का जन्म

इस प्रकार का चमत्कारी अवतारवाद भारत में स्वतंत्रता से पूर्व ही आरंभहो गया था। 1930 में 'चेतावनी' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी, जिस में कहा गया था कि वर्तमान कलियुग 30 जुलाई, 1943 को समाप्त हो जाएगा और अगले दिन से सतयुग आरंभ होगा, पता नहीं, इस पुस्तिका के प्रकाशन का क्या उद्देश्य था। पर इतना ज़रूर है कि तभी से सैंकड़ों लोग अपने को अवतार सिद्ध करने लगे और लोगों को आशीर्वाद व वरदान देने लगें।

अवतारवाद के प्रचार का एक प्रोपेगंडा मैं ने स्वयं भी देखा है। तबमेरी निगाह में एक पैंफलेट आया था। उस पैंफलेट में भगवान के अवतार का आश्वासन यों दिया था, ''साक्षात भगवान के मंदिर में एक बड़ा सर्प बाहर से आया। उस ने केवल पुजारी को दर्शन दिए, पुजारी सर्प से भयभीत हो कर किवाड़ की आड़ में छिप गया। तब सर्पराज ने एक वृद्ध पुरुष

का रूप धारण किया और कहा, ''तुम मुझसे डरो मत। मैं कुछ ही दिनों के भीतर कलियुग में अवतार धारण करूंगा और दुष्ट कर्म करने वालों को कुचल कर न्याय की स्थापना करूंगा। तुम लोगों तक मेरा यह संदेश पहुंचा दो।''

शहर भर में प्रचार करने के बाद एक मंदिर में धर्म प्रेमी लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई थी। फिर सब लोगों ने मिल कर चंदा इकट्ठा किया और उस पैंफलेट में दिए गए पते पर भिजवाया गया-इस आग्रह के साथ कि भगवान का यह संदेश और अधिक लोगों तक पहुंचाया जाए।

कल्कि के गुरु

स्वयं भगवान बनने या प्रत्यक्ष दर्शन और आश्वासन प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त कुछ लोगों ने कल्कि भगवान के गुरु होने का प्रचार भी बड़े जोर-शोर के साथ किया है और इस का लाभ उठाया है। कुछ ही वर्ष हुए हावड़ा के एक संन्यासी स्वामी जगदीश्वरानंद ने हावड़ा में कल्कि मंदिर बनवाया था और घोषित किया था ''दसवें अवतार का जन्म 1985 में होगा तथा मेरी शिष्या मां महागौरी उन की गुरु होगी। कल्कि भगवान के प्रभाव से अनेक देवी देवता मुझे दिखाई देते हैं और मुझ से बातें किया करते हैं।''

उक्त स्वामीजी ने लगभग छः सौ पृष्ठों की एक पुस्तक भी छपवाई थी। कहना नहीं होगा कि दूर-दूर तक फैले उन के शिष्य ने अपने गुरू का यह संदेश लोगों तक पहुंचाया और काफी मात्रा में धन एकत्र कर के स्वामीजी को भेजा ताकि वह भावी अवतार की शिक्षा दीक्षा का समुचित प्रबंध कर सकें।

अवतारवाद को चमत्कारों की श्रेणी में इसलिए रखा गया है कि भगवान बन चुके व्यक्ति उन अलौकिक क्षमताओं से सपन्न भी बताए जाते हैं जिन का उल्लेख पुराणों में आता है। पौराणिक घटनाएं रहस्यकथाएं भी मान लें तो भी इन भगवानों की चमत्कारी शक्तियां ज्यों-त्यों बनी रहती हैं और उन का प्रचार किया जाता है।

गत वर्ष एक साप्ताहिक पत्र ने ऐसी सैंकड़ों घटनाएं छापी थीं जिन के चरित्रनायक अपने आप को श्रेष्ठतम और अंतिम बताते हैं। यहां एक बात स्मरणीय है कि जनसाधारण को किसी के भगवान होने या न होने से उतना मतलब नहीं है। वह तो उन विशेषताओं को देख कर प्रभावित होता है जिन का चमत्कार के रूप में प्रचार किया जाता है और इस आशा से उन अवतारों के इर्दगिर्द हजूम बनाता है कि हमारी समस्याएं हल हो जाएं।

गुरुवाद का चस्का

धर्मगुरू या किसी प्रसिद्ध संत के उत्तराधिकारी भी अपने चमत्कारी व्यक्तित्व के कारण ही लोगों के श्रद्धापात्र बनते हैं। अथवा जिस संत के या महात्मा के वे वंशज होते हैं। उन्हें अतिमानवीय विशेषताओं के साथ लोगों में प्रचारित कर लोगों का धन अपनी और खींचते हैं। ऐसे चमत्कारी साधुसंतों और उन के नाम से चले संप्रदायों की कमी नहीं है।

कितने ही संत हैं जिन की परंपरा अभी तक चली आ रही है। ऐसे ही एक आचार्य के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने अपने अनुयायियों के लिए प्रत्येक चीज पहले गुरू जी (स्वयं) को अर्पित करने का नियम बनाया है। उस समुदाय के अनुयायी अभी तक इस परंपरा का पालन करते हैं। हुआ तो यह भी है कि उस संप्रदाय के अनुयायी विवाह के बाद नववधू को भी महाराज के पास अर्पित करते रहें हैं। नववधू महाराज के पास एक रात रह कर फिर अपने परिवार में जाती है और सामान्य जिंदगी शुरू करती हैं।

उस संप्रदाय के ही एक सुशिक्षित और विचारशील व्यक्ति ने ब्रटिश काल में इस पंरपरा का भंडाफोड़ किया था। महाराज के कारनामे खुल गए। उन के कुछ शिष्यों ने भंड़ाफोड़ करने वाले व्यक्ति पर मानहानि का दावा किया। इस मुकदमे में इतने तथ्य और इतने प्रमाण प्रस्तुत किए गए कि मुकदमे का फैसला महाराज के खिलाफ हो गया। यह मुकदमा उन दिनों सारे देश में चर्चित रहा।

कुछ माह पूर्व एक गुजराती पत्रिका ने उक्त स्वामीजी पर नया प्रकाश डाला था तथा और भी नए तथ्य उद्घाटित किए थे। कहने का आशय यह कि चमत्कार के बल पर लोगों को कितना उल्लू बनाया गया है और उन से अपनी हर उचितअनुचित बात मनवाई जाती है।

यह एक जानी हुई बात है कि अब तक हमारे देश में कोई महापुरुष या धार्मिक संत नहीं हुआ जिस के साथ चमत्कारी विशेषताएं न जोड़ दी गई हों। उन के जीवनकाल में ये चमत्कार प्रचलित रहे हों या न रहे हों, पर उन के शिष्यों और अनुयायियों ने लोगों की श्रद्धा प्राप्त करने के लिए इस तरह की घटनाएं गढ़ीं तथा लोगों में फैलाई ताकि उन का धंधा जम सके।

जिन के पास तथाकथित भगवानों से कम साधन और छोटा क्षेत्र होता है, वे सिद्ध संत बन कर ही भोलीभाली जनता को ठगते रहते हैं। आए दिन ऐसी घटनाएं सामने आती रहती हैं कि अमुक महात्मा ने इतने घंटे समाधि ले कर अपने

प्राण ब्रह्मांड में चढ़ा लिए और इतने दिन बाद जीवित निकल आए, त्रिकालदर्शी मंत्रबल से निरोग देने वाले और नि:संतान व्यक्ति को संतान देने वाले साधु बाबा अकसर गांवों व कसबों में अपने डेरे जमाए रहते हैं और दोनों हाथों से जनता को लूटते रहते हैं।

त्रिकालदर्शी संत

एक त्रिकालदर्शी संत का उल्लेख इस प्रकार पढ़ने में आया है। वह संत गांव से आठ-दस मील दूर रहते थे और उन की सिद्धि से प्रभावित हो कर चालीस-पचास व्यक्ति प्रतिदिन उन के पास जाया करते थे। उक्त स्थान पर जाने के लिए पास के रेलवे स्टेशन से सीधा रास्ता जाता था। महात्मा जी के दो-तीन शिष्य उस स्टेशन पहुँच जाया करते थे और ऐसे लोगों की टोह लेकर उन्हें अपने साथ लाते थे जो महात्मा जी के पास ही आ रहे होते थे।

रास्ते में वे शिष्य भी अपने आप को समस्याग्रस्त बता कर बातों ही बातों में नए व्यक्ति का नाम, पता तथा उस की समस्या पूछ लेते। डेरे पर जो भी नए व्यक्ति आते, उन से इसी तरह उगलवा लिया जाता। फिर वे ही बातें त्रिकालदर्शी महात्मा जी को बता दी जातीं, सुबह महात्मा जी एकएक को नाम लेकर पुकारते तथा नोट की गई सूचनाओं के अनुसार उन के आने का प्रयोजन, समस्या तथा उनकी कल्पित संभावना बता देते। प्राय: हर किसी को उन का आश्वासन रहता कि मैं तेरी सहायता करूंगा। समस्याग्रस्त व्यक्ति का विश्वास तो पहले ही इतना दृढ़ हो गया होता था कि प्राप्त आश्वासन पर संदेह का प्रश्न ही नहीं उठता था। अत: वह यथाशक्ति दानदक्षिणा देकर बाबा जी के आशीर्वाद के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता था।

अनेक साधु महात्मा और फकीर अपने कुछ एजेंट रखते हैं जिन्हें आस-पास के गांवों में भेज कर प्रचार करवाते हैं कि स्वामी जी बड़े पहुंचे हुए सिद्ध पुरुष हैं तथा सब प्रकार के रोगों को एक चुटकी भभूत खिला कर फौरन ठीक कर देते हैं। ये लोग ऐसी कल्पित कहानियां भी गढ़-गढ़ कर सुनाते हैं जिन का न कोई आधार रहता है और न सच्चाई।

लोग तरह-तरह की फरियाद लेकर उन के पास आते हैं और अपनी मनोकामना पूरी होने का आर्शीवाद ले कर स्वामीजी या बाबा की सेवा करते हैं। आम तौर पर ऐसे लोग एक स्थान पर नहीं ठहरते। इसलिए रहस्य-रहस्य ही बना रहता है और वे मौज मजे उड़ाते रहते हैं। कभी कलई खुल भी जाती है तो वे रातों-रात अपना बोरिया बिस्तर समेट कर चलते बनते हैं।

अपनी दिव्य शक्ति द्वारा जो मांगा जाए, वही तुरंत मंगा कर देने वाले एक योगानंद का किस्सा बड़ा रोचक है। वह कुछ समय पूर्व ही एक कसबे में आकर ठहरा था। संयोग से मैं भी वहीं था और उस के चमत्कार को देखने का अवसर प्राप्त कर सका। वह केवल एक लंगोट पहन कर रहता था। उस के संबंध में कहा जाता था कि स्वामी जी को एक योगिनी सिद्ध है। उस योगिनी से कह कर वह जो चाहे। मंगा लेते हैं।

योगिनी का रहस्य

चार छ: दिन तक मैं उन स्वामीजी के पास जाता रहा और उन की गतिविधियों को परखता रहा। उस अवधि में एक सूत्र मेरी पकड़ में आया, वह यहकि चीज़ें मंगाने का आग्रह उस के मुरीद ही किया करते थे। धीरे-धीरे यह भी पता चला कि वे चीजे पहले से मंगा कर रखी ली थीं। किसी नए व्यक्ति को प्रभावित करना होता तो वे मुरीद ही अपरिचित बन कर स्वामी जी को चुनौती देते थे और कहते, ''यदि सचमुच कोई योगिनी आप के वश में है तो हम जो कहें वही चीज मंगाइए।''

स्वामी जी उस चुनौती को स्वीकर करते, मुरीद किसी चीज का नाम बताता स्वामी जी तुरंत अपने सामने रखा हुआ कपड़ा उलटते और वही चीज वहां मौजूद मिलती। इस तरह वह तीन चार बार अपना चमत्कार दिखाते। इतनी बार देखने पर यही पता चला कि अधिकांशत: वही के लोग स्वामी जी को चुनौती देते थे।

एक बार उन के ही किसी मुरीद ने कहा, ''स्वामी जी, यदि योगिनी ही आप को ये वस्तुएं ला कर देती है तो आप लोगों की भेंट व दक्षिणा क्यों ग्रहण करते हैं। योगिनी से ही आप अपनी ज़रूरत की वस्तुएं क्यों नहीं मंगा लेते?''

तब स्वामी जी ने सगर्व कहा, ''योगिनी इस शर्त पर मेरा काम करती है कि मैं उस की लाई चीजों का खुद उपयोग नहीं करूंगा।''

इस तरह सामने वाला प्रभावित हो जाता था। यहां पर यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक होगा कि ये करतब जादूगर भी करके दिखा सकते हैं। इस कला को जादूगरी की भाषा में हाथ की सफाई कहते हैं। सधे हुए जादूगर बाकायदा नौसिखिए जादूगरों को इस की ट्रेनिंग देते हैं।

मंत्रबल से यज्ञाग्नि

मंत्रबल से यज्ञकुंड में अग्नि प्रकट करने का तरीका भी बड़ा चमत्कारी है। कई स्थानों पर ऐसे यज्ञ होते हैं जिन के आचार्य मंत्रशक्ति द्वारा यज्ञकुंड में अग्नि प्रज्वलित करते हैं।

उज्जैन में एक यज्ञ हो रहा था। तब एक कार्यकर्त्ता उसी दुकान पर यज्ञ का सामान खरीदने आया, जिस पर मैं भी खड़ा था।

उस कार्यकर्त्ता को मैं भी अच्छी तरह जानता था। उस ने बताया कि वह यज्ञ के लिए सामान खरीदने आया है। उस ने जब दुकानदार ने कहा कि उस सूची में लिखे सामान में पोटाश नहीं है और सब चीजें मिल जाएंगी।

आश्चर्य हुआ कि यज्ञ में पोटाश का क्या काम, बात बहुत बाद में स्पष्ट हो सकी, जब एक स्थान पर पढ़ा कि हवनकुंड के आसपास रंगबिरंगे चौक पूरे जाएं, सफेद लकीरों को पोटाश से बनाया जाए और राल का चूरा भी बिछाया जाए। हवनकुंड में थोड़ा सा कपूर भी रखा जाए। तब उस में एसिड से भीगी लौंग डालने पर अग्नि स्वतः प्रकट होगी। सावधानी के लिए एसिड से भीगी लौंग को घी से गीली की गई अंगुलियों द्वारा पकड़ा जाए।

'योग के नाम पर मायाचार' पुस्तक में ऐसी ही एक घटना का रहस्योद्घाटन करते हुए लिखा गया है, ''मंत्रोच्चारण किया और जब अग्नि प्रकट करने का अवसर आया तो तेजाब में डूबी हुई लौंग को हवन कुंड में उस स्थान पर छोड़ा जहां पोटाश और शक्कर बिछी रहती थी। तेजाब का स्पर्श होते ही पोटाश जल उठता है। बूरा उसे जलने में और भी मदद करता है। कुंड में जहां-तहां कपूर रखा जाता था जो अग्नि को पकड़ लेता था और समिधाएं जलने लगती थीं।''(पृ. 64)

एक श्रेणी उन लोगों को भी है जो पुजारी या कार्यकर्त्ता होते हैं जिन के संबंध में कहा जाता है कि वहां सब रोगों की जड़ कट जाती है और प्रत्येक मनोकामना पूरी होती है। एक बार किसी व्यक्ति ने यह घोषणा की कि आज रात मुझे सपने में मोतीसर महाराज ने सपना दिया है और कहा है 'कि मैं गांव के बाहर एक बड़ के पेड़ नीचे दबा पड़ा हूँ। मुझे निकालो।' उस समय गांवल में मोती झरा फैला हुआ था।

जिस व्यक्ति ने यह घोषणा की थी, उस की आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय थी और घर-घर में मोतीझरा निकल रहा था। मालवा के आंचल में मोतीझरा को मोतीसर महाराज कहते हैं और समझते हैं कि यह देवता का प्रकोप है। अतः कुछ श्रद्धालु लोगों ने गांव भर के व्यक्तियों को इकट्ठा किया और उस व्यक्ति द्वारा बताए गए स्थान पर खुदाई की गई। वहां से सिंदुरपुता एक पत्थर निकला। देखने पर पता चलता था कि इस पत्थर पर कुछ दिन पहले ही सिंदूर पोतना बंद किया गया है।

उसे निकाल कर एक चबूतरे पर स्थापित किया गया। उसी दिन उस व्यक्ति को, जिस ने सपना देखा था, मोतीसर महाराज की सवारी आई और उस ने घोषणा की कि जो व्यक्ति सवा गज कपड़ा, सवा रुपया, एक नारियल और शक्ति अनुसार अनाज चढ़ा कर पांच यात्राएं करेगा, उस के कष्ट को मैं दूर करूंगा। यात्रा उस जलसे को कहते हैं जिस में देवता की सवारी आती है।

अब हर हफ्ते मंगलवार को वहां यात्रा होने लगी और गाँव वाले शक्ति-भक्ति के अनुसार यात्राएं करने लगे। शुरू में तो उस पुजारी ने मोतीझरे के केस ही हाथ में लिए, बाद में उस यात्रा में दूसरे मामलो की भी सुनवाई होने लगी। कहना नहीं होगा कि इस धंधे से उक्त पुजारी को काफी आमदनी होने वाली थी।

इस तरह चमत्कार को अपना व्यवसाय बना कर मजे की छानने वाले लोग जनता के धन, समय और श्रम को लूटते रहते हैं।

अब उन लोगों को आगे आना चाहिए, जो विचारशील हैं और भली प्रकार समझते हैं कि इस चमत्कारवाद के कारण लोग अकर्मण्य बन रहे हैं, यथार्थ और प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने के लिए साहस नहीं जुटा पा रहे हैं तथा प्रयत्न और पुरुषार्थ से दूर भाग रहे हैं। वास्तविकता को समझ कर उन चमत्कारों को बेनकाब करने की आवश्यकता है जिन के द्वारा लोगों से खिलवाड़ किया जा रहा है।

(स्रोत : पुस्तक 'तंत्र मंत्र यंत्र')

पृष्ठ 38 का शेष

कॉर्पोरेट घराने सरकारी खरीद व्यवस्था को तबाह करके निजी मंडी का विस्तार करने और कॉर्पोरेट खेती द्वारा संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर पर कब्जा जमाकर पूरे विश्व की खाद्य मार्किट पर नियंत्रण करने के लिए उतावले हैं। इनके दबाव के कारण ही सरकार कृषि में निवेश करने और फसलों के एमएसपी पर खरीद की कानूनी गारंटी देने से भाग रही है।

पी.ए.यू, लुधियाना

9876063523

अनुवाद : मुलख पिपली

एक मुलाकात

महाराष्ट्र के एक तर्कशील नेता से

केवल कृष्ण

महाराष्ट्र में अंधविश्वास के खिलाफ संघर्ष कर रहे संगठन अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के राज्य समिति सदस्य और प्रशिक्षण विभाग के प्रमुख श्री अन्ना कदलास्कर के साथ 7 नवंबर को बठिंडा के तर्कशील सदस्यों की बैठक हुई।

दरअसल, वह बठिंडा छावनी में कैप्टन पद पर तैनात अपने बेटे से मिलने बठिंडा आये थे। यहां पहुंचकर उन्होंने रैशनलिस्ट सोसायटी पंजाब के नेता श्री भूरा सिंह से संपर्क किया और यहां रैशनलिस्ट सदस्यों से मिलने की इच्छा व्यक्त की।इस पर बठिंडा इकाई ने अल्प सूचना पर उनके साथ बैठक की। यह बैठक सभी सदस्यों के लिए बहुत उपयोगी रही।

वह भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में एक केमिकल इंजीनियर के रूप में कार्यरत हैं । जब वे रात की ड्यूटी पर होते हैं, तो कुछ घंटों की नींद पूरी करने के बाद, बाकी दिन वे तर्कशीलता को बढ़ावा देने के लिए काम करते हैं। उन्होंने कहा कि वे पिछले 23 वर्षों से समाज से जुड़े हुए हैं और इस दौरान उन्होंने 1600 से अधिक व्याख्यान दिए हैं। क्योंकि उनके पास सदस्यों को प्रशिक्षित करने की जिम्मेदारी है, वे नए सदस्यों को सिखाते हैं कि उन्हें सार्वजनिक रूप से अपने साथ क्या ले जाना है और इसे कैसे लेना है। हमारे सदस्यों ने उनसे इस बारे में अधिक जानकारी प्रदान करने के लिए कहा कि वे युवा लोगों और छात्रों के बीच कैसे काम करते हैं।

स्कूलों में प्रचार

"स्कूलों में, हम सबसे पहले शुरुआत करते हैं कि आदमी कहाँ से आया, यानी आदमी कैसे विकसित हुआ," उन्होंने कहा। फिर हम जादू टोना, ज्योतिष और अन्य अंधविश्वासों के बारे में बात करते हैं और रुचि बनाए रखने के लिए कुछ जादू के टोटके करते हैं। इसके अलावा हम किशोर अवस्था में होने वाले शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। इसलिए हमने दो फिल्में बनाईं (एक लड़कों के लिए और दूसरी लड़कियों के लिए), वे दिखाते हैं। साथ ही हम कहते हैं कि इस उम्र में लड़के-लड़कियों का आकर्षित होना स्वाभाविक है, लेकिन इसे अपनी शिक्षा और सोच पर हावी नहीं होने देना है। "वे त्योहारों को स्वच्छ और प्रदूषण मुक्त तरीके से मनाने के लिए स्कूलों में अभियान भी चलाते हैं। इस तरह के कार्यक्रमों की सफलता के बारे में उन्होंने कहा कि पालगर के एक स्कूल के बच्चों ने दिवाली पर पटाखों से 38000 रुपये बचाए और दान किए।

कॉलेजों में - दिल, दोस्ती, दुनियादारी

उन्होंने कहा कि कॉलेज के छात्रों के लिए हम 'दिल, दोस्ती, दुनियादारी' नाम से एक कार्यक्रम चलाते हैं। उनके शब्दों में : "हम युवाओं को बताते हैं कि कितना दिल देना है! यानी लड़के और लड़की को अपने रिश्ते में हद से आगे नहीं जाना चाहिए.हम एक आम जगह पर बैठने, चाय पीने, बात करने, एक-दूसरे को समझने आदि तक सीमित रहने की व्याख्या करते हैं। किससे दोस्ती करनी है और किससे नहीं दोस्ती करनी है, इस बारे में बात करना। सांसारिकता का अर्थ है कि छात्रों को अपने पाठ्यक्रम के अलावा सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं को समझने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि हम इस बारे में कोई बात नहीं करते हैं, लेकिन हम उनसे चर्चा करते हैं जिसमें हम छात्रों के सवाल और राय लेते हैं, यानी हमारे बीच दोतरफा संवाद होता है। अंधविश्वास के खिलाफ कानून का प्रभाव-

महाराष्ट्र में उनका संगठन अंधविश्वास के खिलाफ कानून बनाने के लिए लंबे समय से संघर्ष कर रहा है। जब डॉ. नरेंद्र दाभोलकर शहीद हुए थे, तब सरकार को लोगों के दबाव में ऐसा कानून बनाने के लिए मजबूर होना पड़ा था। श्री अन्ना कदलास्कर ने कहा कि इस अधिनियम के तहत अब तक लगभग 750 मामले दर्ज किए गए हैं, जिनमें से लगभग 50 को दोषी ठहराया जा चुका है। जिन लोगों को दोषी नहीं ठहराया गया है, उनका भी मामला दर्ज करने से उनका काम बहुत कम हो जाता है। अन्धविश्वास विरोधी समिति की नीति है कि पीड़ित द्वारा मामले को आगे बढ़ाया जाए ताकि न्यायालयों में समिति का समय बर्बाद न हो। हालाँकि, यदि आवश्यक हो तो समिति कुछ सहायता प्रदान करती है। उन्होंने अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति द्वारा चलाए जा रहे अन्य कार्यक्रमों के बारे में

शेष पृष्ठ 44 पर

माता पिता और अध्यापकों के लिए

नई सवेर पाठशाला

बच्चे को किसी बाहरी दबाव में सीखने के लिए प्रशिक्षित न करें; बल्कि उन्हें इस दिशा में ऐसा मार्ग दें जिसमें वे प्रसन्नता महसूस करते हों, ताकि आप प्रत्येक व्यक्ति में छिपी अद्भुत प्रतिभा को अधिक सटीकता के साथ खोजने के योग्य हो सकें- प्लेटो

अपने बचपन को याद करते हुए मैं खुद को मधुमक्खी के रूप में दृर्शाना पसंद करूंगा जिसको भिन्न-भिन्न साधारण व अस्पष्ट लोग जीवन के बारे अपने ज्ञान और विचारों का शहद देते थे और मेरे चरित्र को खुले दिल से अपने तजुर्बे के साथ गति देते थे। अक्सर यह अनुभव बुरा और कड़वा होता था, परन्तु ज्ञान की प्रत्येक बूंद शहद के समान होती थी।- मैक्सिम गोर्की (मेरा बचपन)

सच्चा साहित्य वही होता है जो हमें मानव विरोधी प्रवृत्तियों से नफरत करनी सिखाता है, जो हमें समाज में मौजूद निराशा, स्वार्थ और अत्याचार के प्रति चिंतित होने की संवेदना, उनके कारण खोजने का विवेक और उनके विरुद्ध संघर्ष करने की हिम्मत और ताकत प्रदान करता है, और जो हमें लगातार बेहतर इंसान बनने और समाज के उज्जवल भविष्य के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करता है- इवान तुर्गेनेव (बेजान चरागाह की भूमिका में से)

मैं महसूस करता हूं कि अगर आपने बच्चों का अच्छा अध्यापक बनना है तो अपना दिल उन्हें सौंप दें। बच्चों को प्यार करना अध्यापक का काम है- वसीली सुख़ोम्लीन्स्की

मैं देखता हूं, हमारे स्कूल में कई बच्चे हकलाते थे, चोरी करते थे। हर बार मुझे इसका कारण यह मिला कि उनके माता-पिता ने उन्हें कई बार बुरी तरह से पीटा, ऐसे जैसे कोई चोरों को भी नहीं पीटता। अब इस पिटाई का प्रभाव दूर करना एक बड़ा मुश्किल सवाल बन रहा है। बड़ी बड़ी शरारतें करने वाले, साथियों को बेरहमी से पीटने वाले, उनकी वस्तुओं को बिना किसी संकोच के तोड़ने-फोड़ने और तबाह कर देने वाले लड़कों की कहानी जब मैं सुनता हूं तो शत प्रतिशत यही बात होती है कि माता-पिता ने उन्हें पीट-पीटकर, उन पर चीख़ चीख़कर बेरहम बना दिया होता है- गुरबक्श सिंह प्रीतलड़ी

हमारे स्कूल की पुस्तकें युद्ध का महिमामंडन करती हैं और इसकी भयानकता को छुपाती हैं। वे बच्चों को नफरत करने के लिए उकसाती हैं। मैं युद्ध की बजाय शांति पढ़ाऊंगा, नफरत की बजाए प्यार सिखाऊंगा- अल्बर्ट आइंस्टाइन

बच्चे की सोच हमेशा संबद्ध (जुड़वां) होती है। वह ऐसी तुलनाओं में, प्रतीकों में सोचता है जो बड़े ही अनोखे होते हैं और इतने विचित्र की बड़ी उम्र वाले उन्हें समझने में असमर्थ रहते हैं - के केनेयेवा

अध्यापन कार्य के पहले वर्षों में ही मेरे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि सच्चा स्कूल केवल ऐसा स्थान नहीं है, जहां बच्चे किन्हीं विषयों का ज्ञान पाते हैं, कुछ करना सीखते हैं। किन्हीं विषयों की ज्ञान प्राप्ति बच्चों के आत्मिक जीवन का एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है, परंतु सारा आत्मिक जीवन इस तक ही सीमित नहीं है। जिसे हम लोग शिक्षण एवं चरित्र निर्माण प्रक्रिया कहते हैं, उसको मैंने जितनी ग़ौर से देखा, उतना ही अधिक मैं इस बात का क़ायल होता गया कि सच्चा स्कूल वही है, जहां बाल समुदाय का बहुमुखी आत्मिक जीवन होता है, जिसमें शिक्षक और छात्र अनेकानेक रुचियों और शौकों के द्वारा एक दूसरे से जुड़े होते हैं- वसीली सुख़ोम्लीन्स्की

आज से बीस साल बाद आप उन चीजों को लेकर ज्यादा उदास होंगे जो आपने नहीं की, उन चीजों के मुकाबले, जो आपने की हैं। इसलिए जहाज की रस्सियां खोल दें। व्यापारिक हवाओं को अपनी कश्तियों में कैद कर लें। खोजी यात्राएं करें। स्वप्न देखें। तलाश करें। - मार्क टवेन

संग्रह : दाता सिंह नमोल (9417677407)
अनुवाद : मुलख पिपली

पृष्ठ 43 का शेष

भी बताया कि उनकी संस्था करीब 40 कार्यक्रम चलाती है। उदाहरण के लिए, किसी संगठन के कार्यकर्ता जो मानसिक तनाव से पीड़ित लोगों को परामर्श प्रदान करते हैं, "मानसिक-मित्र," कहलाते हैं। नरेंद्र दाभोलकर के बेटे हामिद दाभोलकर खुद एक मनोचिकित्सक हैं, वह इन मनोविज्ञानियों को प्रशिक्षित करते हैं। महिलाओं के काम करने के लिए अलग-अलग कार्यक्रम बनाए गए हैं। वह रैशनलिस्ट सोसाइटी, पंजाब के साहित्यिक प्रचार से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा कि हम इस क्षेत्र में पिछड़ रहे हैं, हमारी पत्रिका भी पांच हजार ही प्रकाशित हो रही है. उन्होंने कहा कि विभिन्न राज्यों के तर्कशील संगठन एक-दूसरे से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

मीडिया हेड, यूनिट बठिंडा।

अंधविश्वास नहीं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाएं .डॉ. दिनेश मिश्र

शासकीय गुण्डाधुर कॉलेज कोंडागांव में व्याख्यान

अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के अध्यक्ष व नेत्र विशेषज्ञ डॉ. दिनेश मिश्र ने शासकीय गुण्डाधुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंडागांव द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण और अंधविश्वास विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा देश में अंधविश्वास और सामाजिक कुरीतियों के कारण अक्सर अनेक निर्दोष लोगों को प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है,जिससे निदान के लिए आम जन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की अत्यंत आवश्यकता है.

डॉ. दिनेश मिश्र ने कहा कुछ लोग अंधविश्वास के कारण हमेंशा शुभ-अशुभ के फेर में पड़े रहते है। यह सब हमारे मन का भ्रम है। शुभ-अशुभ सब हमारे मन के अंदर ही है। किसी भी काम को यदि सही ढंग से किया जाये, मेहनत, ईमानदारी से किया जाए तो सफलता जरूर मिलती है। उन्होंने कहा कि 18वीं सदी की मान्यताएं व कुरीतियां अभी भी जड़े जमायी हुई है जिसके कारण जादू-टोना, डायन, टोनही, बलि व बाल विवाह जैसी परंपराएं व अंधविश्वास आज भी वजूद में है। जिससे प्रतिवर्ष अनेक मासूम जिन्दगियां तबाह हो रही है। उन्होंने कहा कि ऐसे में वैज्ञानिक जागरूकता को बढ़ाने और तार्किक सोच को अपनाने की आवश्यकता है। उन्होंने आगे कहा कि अंधविश्वास को कुरीतियों के विरूद्ध समाज के साथ विद्यार्थियों को भी एकजुट होकर आगे आना चाहिए।

डॉ. मिश्र ने कहा प्राकृतिक आपदायें हर गांव में आती है, मौसम परिवर्तन व संक्रामक बीमारियां भी गांव को चपेट में लेती है, वायरल बुखार, मलेरिया, दस्त जैसे संक्रमण भी सामूहिक रूप से अपने पैर पसारते है। ऐसे में ग्रामीण अंचल में लोग कई बार बैगा-गुनिया के परामर्श के अनुसार विभिन्न टोटकों, झाड़-फूंक के उपाय अपनाते है। जबकि प्रत्येक बीमारी व समस्या का कारण व उसका समाधान अलग-अलग होता है, जिसे विचारपूर्ण तरीके से ढूंढा जा सकता है। उन्होंने कहा कि बिजली का बल्ब फ्यूज होने पर उसे झाड़-फूंक कर पुन: प्रकाश नहीं प्राप्त किया जा सकता न ही मोटर साईकल, ट्रांजिस्टर बिगड़ने पर उसे ताबीज पहिनाकर नहीं सुधारा जा सकता। रेडियो, मोटर साईकल, टी.वी., ट्रेक्टर की तरह हमारा शरीर भी एक मशीन है जिसमें बीमारी आने पर उसके विशेषज्ञ के पास ही जांच व उपचार होना चहिए। डॉ. मिश्र ने विभिन्न सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों की चर्चा करते हुए कहा कि बच्चों को भूत-प्रेत, जादू-टोने के नाम से नहीं डराएं क्योंकि इससे उनके मन में काल्पनिक डर बैठ जाता है जो उनके मन में ताउम्र बसा होता है। बल्कि उन्हें आत्मविश्वास, निडरता के किस्से कहानियां सुनानी चाहिए। जिनके मन में आत्मविश्वास व निर्भयता होती है उन्हें न ही नजर लगती है और न कथित भूत-प्रेत बाधा लगती है। यदि व्यक्ति कड़ी मेहनत, पक्का इरादा का काम करें तो कोई भी ग्रह, शनि, मंगल, गुरू उसके रास्ता में बाधा नहीं बनता.

डॉ. दिनेश मिश्र ने कहा - देश में जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक की मान्यताओं एवं डायन (टोनही)के संदेह में प्रताडऩा तथा सामाजिक बहिष्कार के मामलों की भरमार है। डायन के सन्देह में प्रताडऩा के मामलों में अंधविश्वास व सुनी-सुनाई बातों के आधार पर किसी निर्दोष महिला को डायन घोषित कर दिया जाता है तथा उस पर जादू-टोना कर बच्चों को बीमार करने, फसल खराब होने, व्यापार-धंधे में नुकसान होने के कथित आरोप लगाकर उसे तरह-तरह की शारीरिक व मानसिक प्रताडऩा दी जाती है। कई मामलों में आरोपी महिला को गाँव से बाहर निकाल दिया जाता है। बदनामी व शारीरिक प्रताडऩा के चलते कई बार पूरा पीड़ित परिवार स्वयं गाँव से पलायन कर देता है। कुछ मामलों में महिलाओं की हत्याएँ भी हुई है अथवा वे स्वयं आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती है। जबकि जादू-टोना के नाम पर किसी भी व्यक्ति को प्रताड़ित करना गलत तथा अमानवीय है। वास्तव में किसी भी व्यक्ति के पास ऐसी जादुई शक्ति नहीं होती कि वह दूसरे व्यक्ति को जादू से बीमार कर सके या किसी भी प्रकार का आर्थिक नुकसान पहुँचा सके। जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, टोनही, नरबलि के मामले सब अंधविश्वास के ही उदाहरण हैं। महाराष्ट्र छत्तीसगढ़,मध्यप्रदेश ओडीसा, झारखण्ड, बिहार, आसाम सहित अनेक प्रदेशों में प्रतिवर्ष टोनही/डायन के संदेह में निर्दोष महिलाओं की हत्याएँ हो रही है जो सभ्य समाज के लिये शर्मनाक है। नेशनल क्राईम रिकॉर्ड ब्यूरो ने सन् 2001 से 2015 तक 2604 महिलाओं की मृत्यु डायन प्रताडऩा के कारण होना माना है। जबकि वास्तविक संख्या इनसे बहुत अधिक है अधिकतर मामलों में पुलिस रिपोर्ट ही नहीं हो पातीं।हमने जब आर टी आई से जानकारी प्राप्त की तब हमें

बहुत ही अलग आंकड़े प्राप्त हुए. झारखंड में 7000 ,बिहार में 1679 छत्तीसगढ़ में 1357,ओडिशा 388 में ,राजस्थान 95 में,आसाम में 75 मामलों की प्रमाणिक जानकारी है।जबकि कुछ राज्यों से जवाब ही नहीं मिला. पर समाचार पत्रों में लगभग सभी राज्यों से ऐसी घटनाओं के समाचार मिलते हैं

डॉ. मिश्र ने कहा आम लोग चमत्कार की खबरों के प्रभाव में आ जाते हैं। हम चमत्कार के रूप में प्रचारित होने वाले अनेक मामलों का परीक्षण व उस स्थल पर जाँच भी समय-समय पर करते रहे हैं। चमत्कारों के रूप में प्रचारित की जाने वाली घटनाएँ या तो सरल वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के कारण होती है तथा कुछ में हाथ की सफाई, चतुराई होती है जिनके संबंध में आम आदमी को मालूम नहीं होता। कई स्थानों पर स्वार्थी तत्वों द्वारा साधुओं को वेश धारण चमत्कारिक घटनाएँ दिखाकर ठगी करने के मामलों में वैज्ञानिक प्रयोग व हाथ की सफाई के ही करिश्में थे।

डॉ. मिश्र ने कहा भूत-प्रेत जैसी मान्यताओं का कोई अस्तित्व नहीं है। भूत-प्रेत बाधा व भुतहा घटनाओं के रूप में प्रचारित घटनाओं का परीक्षण करने में उनमें मानसिक विकारों, अंधविश्वास तथा कहीं-कहीं पर शरारती तत्वों का हाथ पाया गया। आज टेलीविजन के सभी चैनलों पर भूत-प्रेत, अंधविश्वास बढ़ाने वाले धारावाहिक प्रसारित हो रहे हैं। ऐसे धारावाहिकों का न केवल जनता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है बल्कि छोटे बच्चों व विद्यार्थियों पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में हमने राष्टीय स्तर पर एक सर्वेक्षण कराया है जिसमें लोगों ने ऐसे सीरीयलों को बंद किये जाने की मांग की है। ऐसे सीरीयलों को बंद कर वैज्ञानिक विकास व वैज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ाने व विज्ञान सम्मत अभिरूचि बढ़ाने वाले धारावाहिक प्रसारित होना चाहिए। भारत सरकार के दवा एवं चमत्कारिक उपचार के अधिनियम 1954 के अंतर्गत झाड़-फूँक, तिलस्म, चमत्कारिक उपचार का दावा करने वालों पर कानूनी कार्यवाही का प्रावधान है। इस अधिनियम में पोलियो, लकवा, अंधत्व, कुष्ठरोग, मधुमेह, रक्तचाप, सर्पदंश, पीलिया सहित 54 बीमारियाँ शामिल हैं। लोगों को बीमार पडने़ पर झाड़-फूँक, तंत्र-मंत्र, जादुई उपचार, ताबीज से ठीक होने की आशा के बजाय चिकित्सकों से सम्पर्क करना चाहिए क्योंकि बीमारी बढ़ जाने पर उसका उपचार खर्चीला व जटिल हो जाता है।

डॉ. मिश्र ने कहा अंधविश्वास, पाखंड एवं सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन एक श्रेष्ठ सामाजिक कार्य है जिसमें हाथ बंटाने हर नागरिक को आगे आना चाहिए।

अंधविश्वास के चलते

पत्नी और तीन बच्चों की हत्या कर खुद भी दी जान लिखा-इससे मोक्ष मिलेगा ।

खीर में जहर देने के बाद कुदाल से किया वार

अग्रोहा।हिसार। नंगथला गांव में सोमवार अलसुबह 40 वर्षीय व्यक्ति ने पत्नी और तीन बच्चों की हत्या कर खुद भी जान दे दी । यह कदम उठाने से पहले 40 वर्षीय रमेश वर्मा ने सुसाईड नोट में लिखा -मोक्ष प्राप्ति के लिए पत्नी और बच्चों की हत्या कर जान दे रहा हूं। उसने पहले पत्नी और बच्चों को खीर में ज़हर दिया। फिर लोहे की कुदाल से वार कर हत्या कर दी । इसके बाद रमेश ने रोड पर जाकर एक वाहन के आगे कूद कर अपनी जान दे दी। बरवाला मार्ग पर रमेश का शव पड़ा देख ग्रामीण जब उसके घर सूचना देने पहुंचे तो आवाज देने पर कोई जवाब नहीं मिला। ग्रामीणों ने घर में प्रवेश किया तो बेड और चारपाई पर रमेश की पत्नी सविता देवी (35) बेटी अनुष्का (14), दीपिका (13) और बेटे केशव (10) के शव पड़े थे। एक ही परिवार के पांच लोगों की मौत की सूचना पर डी आई जी बलवान सिंह राणा, डीएसपी नारायणचंद, अग्रोहा पुलिस थाना व विशेषज्ञों की टीम मौके पर पहुंची। पुलिस ने दो सुसाइड नोट बरामद किए। एक मृतक की जेब और दूसरा उसके कमरे में रखी कॉपी में मिला। घटनास्थल से खून से सनी एक कुदाल भी बरामद हुई है। वहीं, दीपिका के सिर पर वार के ज्यादा निशान मिले हैं। शाम करीब 6 बजे तक पांचों शवों का पोस्टमार्टम किया गया ।

डीआईजी बलवान सिंह राणा ने बताया कि मृतक के भाई सुनील के बयान पर रमेश वर्मा के खिलाफ 302 का केस दर्ज किया गया है। देर शाम गांव में पांचों का अंतिम संस्कार किया गया। ब्यूरो।

-अमर उजाला 21-12-2021

इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि मेरा अस्तित्व है किन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ईश्वर का अस्तित्व है। इसलिए मेरे होने से मेरे जीवन में ईश्वर का होना सिद्ध नहीं होता। - जी.ई.मूर

नकली/छद्म वैज्ञानिक शक्तियों की बढ़ रही धृष्टता

दिनेश सी शर्मा

पिछले दिनों इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा जमानत के एक केस में दिया गया फैसला देश भर में सुर्खियों में छाया रहा। ऐसा किसी नए न्यायिक मार्गदर्शन के कारण न होकर, इसके नकली/छद्म विज्ञान के समर्थन की वजह से हुआ। बेनाम वैज्ञानिकों के प्रयाप्त संख्या में हवालों से फैसले में लिखा गया, "वैज्ञानिकों का मानना है कि गाय ही अकेला ऐसा जानवर है जो सांस में ऑक्सीजन अंदर लेता है और ऑक्सीजन ही बाहर निकालता है।"

इस फैसले में यह भी दावा किया गया है कि 'पंचगवा' अर्थात यज्ञ में इस्तेमाल किए गए गाय के दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर के मिश्रण से मानवता का भला होता है; जिससे इससे जुड़ी आस्था पर न्यायिक मुहर लग गई है। जज ने फैसला दिया कि 'गाय के घी को जलाने से सूर्य की किरणों को विशेष ऊर्जा मिलती है जो वर्षा लाने में सहायक होती है।'

इस सब को वैज्ञानिक घोषित करते हुए अदालत ने गौ रक्षा के लिए ढेर सारे कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक हवालों की सहायता ली। फैसले में जो कुछ कहा गया है, वह नया नहीं है। इसने उन दावों को और पुख्ता किया है जो वट्सऐप या अन्य सोशल मीडीया प्लेटफार्मों पर कुछ वर्षों से आम प्रचारित किए जाते रहें हैं। बहुत से राजनेताओं और असर रसूख वाले व्यक्तियों ने इन दावों पर समय-समय पर मुहर लगाई है। राजस्थान के शिक्षा मंत्री वासुदेव दावनली ने जनवरी 2017 में दावा किया था कि गाय ही इकलौता ऐसा जानवर है जो सांस द्वारा ऑक्सीजन लेता और छोड़ता है। यही दावा उत्तराखंड विधानसभा में पशु पालन मंत्री रेखा आर्य ने दोहराया। उसके दावे का समर्थन करते हुए तत्कालीन मुख्य मंत्री त्रिवेंदर सिंह रावत ने जुलाई 2019 में उससे कुछ कदम आगे बढ़ते हुए बयान दिया- "गाय की मालिश करने से सांस की समस्याएं ठीक होती हैं।"

हाईकोर्ट के फैसले ने ऐसे दावों को न्यायिक 'आशीर्वाद' प्रदान किया है। यदि सर्वोच्च अदालत द्वारा इसे रद्द नहीं किया जाता तो यह फैसला न्यायिक इतिहास का स्थाई हिस्सा बन जाएगा और भविष्य में गौ रक्षा से संबंधित केसों में इस्तेमाल किया जाएगा। कानूनी उदाहरण बनने के साथ-साथ इस फैसले ने भारत में विज्ञान विरोधी शक्तियों को बल प्रदान किया है।

यह रुझान भारतीय विज्ञान कांग्रेस जैसे कार्यक्रमों में पुष्पक विमान की चर्चा और पुरातन समय में होती प्लास्टिक सर्जरी के छिटपुट हवालों से शुरू हुआ। मुख्य धारा के वैज्ञानिक संस्थानों ने इन दावों को महत्वहीन व ध्यान न देने योग्य कहकर नजरअंदाज़ कर दिया। इसने लोगों के ध्यान आकर्षण के लिए कुछ राजनेताओं और मंत्रियों का सार्वजनिक तौर पर ऐसे ब्यान देने का हौसला बढ़ाया। उच्च शिक्षा के राज्य मंत्री सत्यपाल सिंह ने 2018 में कहा कि डार्विन का विकासवाद का सिद्धान्त अवैज्ञानिक है। भारत के लिए यह 'पृथ्वी समतल है' वाला समय था और आधुनिक विज्ञान व वैज्ञानिक विधियों पर तीखे हमलों की शुरूआत हो गई।

विज्ञान विरोधी अभियान के अगले दौर में सोशल मीड़ीया पर छाए स्वयं घोषित गुरुओं और पदम सम्मान विजेता कुछ 'हस्तियों' ने ऐलोपैथी दवाइयों, कण-भौतिक विज्ञान और रोग प्रतिरोधकता आदि पर हमले करना शुरू कर दिए। संदिग्ध मान्यता वाली कुछ पत्रिकाएँ छद्म-विज्ञान की रचनाएं छाप रहीं हैं। उदाहरण के लिए, हृदयरोग विशेषज्ञ बी ऐम हेगड़े ने स्व-प्रतिरक्षित बीमारियों (Autoimmune Diseases) का इस प्रकार वर्णन किया है कि मानव शरीर में सैंकड़ों करोड़ कोशिकाएं हैं जो एक-दूसरे और संसार की अन्य कोशिकाओं को प्यार करती हैं। दूसरे व्यक्तियों के प्रति शत्रुता का भाव हमारी कोशिकाओं को भ्रमित कर देता है। यदि यह मानसिक प्रवृत्ति बढ़कर एक लक्षण बन जाए तो कुछ समय बाद हमारी अपनी कोशिकाएं दूसरी कोशिकाओं और स्व-रोग-निरोधक प्रबंध को नफरत करने लग जाती हैं। मैं इसको स्व-पर के विरोध की तरह लेता हूँ। यह स्वामी नित्यानंद द्वारा प्रचारित "मेरे अंदर का मैं, मेरे साथ बातें करता" जैसे शब्द-जाल के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

विज्ञान विरोधी बढ़ रहे अनाप-शनाप ब्यान केवल नुक्सान रहित सोशल मीडिया सुनामी नहीं है। ऐसी बातें करने वाले लोग राजकीय नीतियों और आम जनता के व्यवहार पर भी असर डालते हैं। अपने डार्विन विरोधी ब्यान के बाद

सत्यपाल सिंह ने यह शपथ ली कि वह स्कूलों, कॉलेजों के पाठ्यक्रम में से यह सिद्धान्त निकाल कर ही सांस लेगा। एन आई टी आई आयोग के साथ साथ कई राज्य सरकारों ने सतगुरू द्वारा सुझाया दरिया–काया–कल्प कार्यक्रम अपना लिया गया है। जब कि रामदेव का पतंजलि संस्थान सरकार के कई शिक्षा विभागों का हिस्सा है। हेगड़े कर्नाटक और कई राज्यों के विशेषज्ञ और नीति निर्माण संस्थानों का सदस्य है। केंद्र सरकार के विज्ञान और तकनीकी संस्थान ने देसी गाय से होने वाले फायदों पर खोज कार्यों के लिए पैसा दिया है।

पिछले वर्ष कोरोना महामारी के दौरान बहुत सी बातों पर चर्चा हुई। जिससे पता चलता है कि नकली विज्ञान का प्रचार लोगों की सोच और व्यवहार को कैसे प्रभावित करता है। कई जगहों पर सांस की तकलीफ से पीड़ित व्यक्ति जो अस्पताल के बिस्तर से उठ नहीं सकते थे, व्हट्सएप पर आए ऐसे संदेशों से प्रभावित होकर पीपल के वृक्षों की तरफ कतारें बांधकर जाते देखे गए। जिन संदेशों में यह बताया गया था कि पीपल का वृक्ष दूसरे वृक्षों से ज्यादा ऑक्सीजन छोड़ता है।

कई लोगों के मन में कोरोना टीकाकरण करवाने में आई हिचकिचाहट सोशल मीडिया में घूम रही जानकारी के कारण भी थी। इस दौरान कई उपभोक्ता कंपनियों ने अपनी स्वास्थ्य संबंधी वस्तुओं की बिक्री के लिए छद्म विज्ञान का भरपूर लाभ उठाया।

मुख्यधारा में विज्ञान विरोधी रुझान और छद्म विज्ञान के और जड़ें पकड़ जाने से रोकने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार की जरूरत है। ऑल इंडिया पीपलज़ साइंस, ब्रेक–थ्रू साइंस सोसायटी जैसे लोक संगठनों ने वैज्ञानिक चेतना जागृति लहर के लिए और प्रणव राधाकृष्णन जैसे व्यक्तियों ने छद्म विज्ञान विरुद्ध प्रशंसनीय काम किया है। ऐसी और आवाजों की जरूरत है।

छद्म विज्ञान के प्रचार में केंद्रीय और राज्य सरकारी वैज्ञानिक संस्थान या तो चुप हैं या उसमें हिस्सेदार हैं। वे मंत्रियों और उनके कार्यक्रमों पर बहुत ज्यादा पैसा खर्च करते हैं पर लोगों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने के लिए उनके पास पैसा नहीं होता है। अगर कोई वैज्ञानिक लोगों से मिलकर या सोशल मीडिया पर वैज्ञानिक मुद्दों पर संपर्क कायम करता है तो उसे विभागीय नियमों के बहाने दंडित किया जाता है। देश में कई सरकारी संस्थान हैं जिनके पास विज्ञान का लोगों में प्रचारित प्रसारित करने और अंधविश्वासों और विज्ञान विरोधी दुष्प्रचार को रोकने की जिम्मेवारी है पर वे भी छद्म विज्ञान फैलाने वाले उन दागी संगठनों के साथ एकजुट हैं। वैज्ञानिक पक्ष से जिनकी भूमिका साफ सुथरी नहीं है।

वैज्ञानिक अकादमियां और वैज्ञानिक संस्थान पहल कदमी करते हुए तथ्यों के आधार पर छद्म विज्ञान का पर्दाफाश करते हुए लोगों को वैज्ञानिक विधियों के बारे में जागरूक कर सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण– आलोचनात्मक सोच और प्रश्न करने की योग्यता पर आधारित जीने की कला है।

इस तरह की परिस्थितियों में हमारी शैक्षणिक व्यवस्था और विशेष तौर पर विज्ञान की शिक्षा के बारे में काफी कुछ किया जाना बाकी है। वैज्ञानिक समुदाय को इसके लिए आगे आना चाहिए। वैज्ञानिक अकादमी ने सत्यपाल सिंह के ब्यान पर एतराज जताया था पर उसे लंबी लड़ाई की रणनीति तैयार करनी होगी ताकि स्कूल स्तर से विज्ञान की शिक्षा में सुधार लाकर वैज्ञानिक सोच का संचार किया जा सके।

द ट्रिब्यून से धन्यवाद सहित
अनुवाद – अवतार गोंदारा
पंजाबी से हिंदी अनुवाद–मुलख पिपली

मैंने काम की काफी किताबें पढ़ी है, पर मुझे नहीं लगता कि ईश्वर किसी भी काम का उपयोगी हिस्सा है।

– वर्जिनिया वुल्फ

मुक्ति का मार्ग

काल्पनिक देवी–देवताओं की मूर्तियों के आगे नाक रगड़ने से तुम्हारी भूखमरी, दरिद्रता व गुलामी दूर नहीं होगी।

अपने पुरखों की तरह तुम भी चिथडे मत लपेटो, दडबे जैसे घरों में मत रहो और इलाज के अभाव में तड़प–तड़प कर जान मत गंवाओ। भाग्य व ईश्वर के भरोसे मत रहो, तुम्हें अपना उद्धार खुद ही करना है। धर्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धर्म के लिए नहीं और जो धर्म तुम्हें इन्सान नहीं समझता, वह धर्म अधर्म का बोझ है। जहां ऊँच–नीच की व्यवस्था है, वह धर्म नहीं, गुलाम बनाये रखने की साजिश है।

डा. भीमराव अम्बेड़कर

विशेष सम्मान - एक कर्मशील इन्सान के नाम पर

मान-सम्मान हमें खुशियां देते हैं। आपके मन के अंदर यह विश्वास पैदा करते हैं कि जो कुछ आप कर रहे हो, उसको कोई देख रहा है, समझ रहा है, मान रहा है व सराहनीय है। सम्मान हमारे कंधों पर सिर्फ तमगे की तरह नहीं लगते, बल्कि आपके कंधों पर जिम्मेदारी का भार भी डालते हैं। कंधों का हर हालात में मजबूत होना बहुत ज़रूरी है। आज के सम्मान के बाद मेरे अहसास कुछ ऐसे ही हैं।

सबसे खास बात यह है कि आज का सम्मान कृष्ण बरगाड़ी के नाम पर मिला है। वह एक आलराऊँडर बहुअयामी शख्सीयत थे। बरगाड़ी में मनोरोग केंद्र चलाना, मनोरोगियों का इलाज करना, लोगों को वहमों-भ्रमों से बाहर निकालना, वैज्ञानिक चेतना का प्रचार व प्रसार करना व बहुत सारे परिवारों को उस कलेश से मुक्त करना जो सिर्फ उनकी अज्ञानता के कारण पड़ा हुआ था उन्हें पखंडी साधु-संत लूट रहे थे। तर्कशील सोसाइटी पंजाब का यह कर्मशील योद्धा, जो खेल कबड्डी के जबरदस्त खिलाड़ी थे, आखिर कैंसर जैसी नामुराद बिमारी ने उनको घेर लिया, पर वह कभी भी घबराए नहीं और जीवन के अंत तक चढ़दी कला में रहे। उन चढ़दी कला वाले इन्सान के नाम पर सम्मान हासिल करना मेरी जिंदगी का एक विशेष गौरवमय क्षण है।

मंच से जो सम्मान पत्र पढ़ा गया, उस ने मुझे भावुक भी किया व इस बात का मान महसूस हुआ कि वह सम्मान पत्र में भाई गुरशरण सिंह का जिक्र बहुत खूबसूरत तरीके से किया गया था। प्रसिद्ध इतिहासकार सुभाष परिहार, प्रसिद्ध चिंतक हेम राज सटैनो, चिंतक राजपाल सिंह, मास्टर राजेन्द्र भदौड़, जसवंत मोहाली, कृष्ण जी की जीवन संगिनी राजिंदर बहन जी व अन्य अतिथियों से सम्मान लेना बहुत अच्छा लगा।

डा. साहिब सिंह

27 फरवरी, 2022

मां की याद में तर्कशील भवन के लिए एक लाख रुपए

गाँव गुरूसर (मुक्तसर) के सेवा मुक्त इंजीनियर प्रीतम सिंह पुत्र मरहूम हाकम सिंह धालीवाल ने अपनी माता की स्मृति को गौरवमयी बनाने के लिए सार्थक कदम उठाया है। वैज्ञानिक चेतना के प्रचार प्रासार में अपना योगदान डालते हुए तर्कशील भवन बरनाला को माता निहाल कौर जी की याद में एक लाख रुपए की सहायता राशि भेजी है। 30 वर्षों से तर्कशील लहर से जुड़े प्रीतम सिंह का कहना है कि मां अपनी औलाद को जीवन जांच सिखाने पर उसका रास्ता दर्शाने के लिए जीवन भर कार्य करती है, यही कार्य तर्कशील सोसाइटी पिछले 38 वर्षों से कर रही है, जिस ने अपने कार्यों से वैज्ञानिक चेतना रूपी रौशनी बांटते हुए समाज का रास्ता दर्शाया है। अपने समपर्ण व सब का भला चाहने वाली माता निहाल कौर की याद को संभालने का यह यत्न औरों के लिए प्रेरणा स्रोत है। माता निहाल कौर जी व उनके परिवार की सोच को सलाम।

गुरजिंदर डोहक के बिछड़ने की कसक

ज़िंदगी व समाज को अच्छा बनाने के लिए चला मास्टर गुरजिंदर डोहक नहीं रहे। 7 जनवरी 2022 को उनकी जीवन यात्रा बेवक्त रुक गई। मन में सपने संजोए अपने अध्यापन के साथ इन्साफ करते हुए समाज सेवा, तर्कशीलता, रंग मंच पर क्षेत्र में भी सरगरम रहे। उस के अंदर जाग रही चेतना की रौशनी हमेशा अच्छा, अनोखा करने को प्रेरित करती रही। तर्कशील लहर के प्रचार प्रसार के लिए रंग मंच से जुड़े व अपनी नाट्य मंडली बना कर लोगों को चेतना की जाग लगाते रहे। अपने गाँव, विद्यार्थियों व संगियों-स्नेहियों के पास तर्कशील विचारने की रौशनी बिखेरती बेवक्त बिछड़ गए। समाज के भले व वैज्ञानिक चेतना के लिए उसकी तरफ से किये गए कार्य सदा तर्कशील साथियों की यादों में बस जाते हैं।

कृष्ण बरगाड़ी स्मृति समारोह - 2022

ख्यातिप्राप्त लेखक, नाटककार डॉक्टर साहिब सिंह को कृष्ण बरगाड़ी स्मृति सम्मान प्रदान करते हुए तर्कशील सोसायटी पंजाब की कार्यकारिणी

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. सुभाष परिहार फासीवादी ताकतों द्वारा इतिहास पर हमला विषय पर सेमिनार में अलग वक्तवय रखते हुए

तर्कशील पथ पत्रिका के सम्पादक प्रो. बलवन्त सिंह के बड़े भाई श्री कुलवंत सिंह, (ए एस आई रिटायर्ड) का 6.1.2022 को हार्ट फेल होने से 68 साल की उम्र में देहांत हो गया।

प्रो. बलवन्त सिंह ने अपने बड़े भाई कुलवंत सिंह को स्मरण करते हुए लिखा है कि उन्हें शिक्षा और फिर सर्विस दिलाने में उनका अतुलनीय योगदान रहा, घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण दसवीं के बाद कालेज पढ़ाई दोनो को परिवार करवाने में असमर्थ था इस लिए बड़े भाई ने स्वयं किसानी करने को तरजीह दी जिस कारण वे आगे की पढ़ाई बी ए, एम ए, बी एड आदि सब कर सके और फिर अध्यापक व प्रध्यापक बने उनका भाई भी अपनी मेहनत से पुलिस में सिपाही भर्ती होकर ए एस आई पद से सेवानिवृत्त हुआ। उन्होंने स्मरण करते हुए लिखा कि अपने अध्ययन के दौरान ही बहुत से तर्कशील लोगों से सम्पर्क बना फिर तर्कशील रूप मे कार्य करना ही उनका उद्देश्य बन गया।

तर्कशील सोसायटी उनके दुख में सहभागी बनते हुए परिवार के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करती है।

तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि)
एंव तर्कशील सोसायटी हरियाणा (रजि)

If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Ph. 01679-241466, Cell. 98769 53561
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....